युग निर्माण योजना

अक्टूबर – 2025

₹ 13 – एक प्रति । ₹ 150 – वार्षिक । वर्ष – 62 – अंक – 4

5–प्रार्थना को प्रभावशाली बनाने के सूत्र
14–किशोरावस्था और सावधानियाँ
23–अहंकार है, पतन का कारण
34–वयोवृद्ध माता–पिता की उपेक्षा न ह

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्
उस प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुखस्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अपनी अंतरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करे।

युग निर्माण योजना

नैतिक एवं सांस्कृतिक पुनरुत्थान का मासिक पत्र

संस्थापक / संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ युगद्रष्टा
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
ईश्वर शरण पाण्डेय
सहसंपादक
सूर्यमणि तिवारी
दीनदयाल अमृते
कार्यालय
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा
पि० को० 281003
दूरभाष नंबर
(0565) 2530115, 2530128, 2530399,
मो० 09927086287, 09927086289
(इन पर एस.एम.एस. न करें)
समय : प्रातः 9 से सायं 5 बजे
ई-मेल :
yugnirman@yugnirmanyojna.org
Website : www.yugnirmanyojna.org
अक्टूबर—2025
प्रकाशन तिथि : 17.09.2025
वर्ष : 62 अंक : 4
वार्षिक शुल्क : 150
वार्षिक शुल्क रजिस्टर्ड डाक से 390 रु०
आजीवन (बीसवर्षीय) 3000 रु०
+ 240 रु० (वार्षिक, रजिस्टर्ड डाक से)
वार्षिक विदेश : 2200 रु०

तीनों शरीरों का परिष्कार करें

ईश्वर दर्शन के लिए कहीं बाहर जाने की आवश्यकता नहीं, उसे अपने भीतर ही देखा जाना चाहिए। उसे प्राप्त करने के लिए संयम, सद्विचार और सद्भाव का विकास करना चाहिए। इसी सद्भावसंपन्न आराधना का प्रतिफल है—आनंद। इसी भक्तियोग का साधक सच्चे अर्थों में जीवन-लाभ प्राप्त करता है।

उच्च आदर्शों के प्रति इतनी सघन निष्ठा, भक्तिभावना ही कही जाएगी जो किसी भी भय या प्रलोभन के प्रस्तुत होने पर विचलित न हो सके। भौतिक लिप्साओं के स्थान पर आत्मिक आकांक्षाएँ प्रदीप्त होना, गुण-कर्म-स्वभाव की उत्कृष्टता को सबसे बड़ी संपदा समझना, वैभव-बड़प्पन की उपेक्षा करके महानता के पथ पर अग्रसर होना, यही है सद्भावसंपन्न अंतःकरण का लक्षण। भक्तियोगी इसी स्तर की भावनाओं से ओत-प्रोत रहता है। वह ईश्वर को, आदर्शों को एक ही तत्त्व के रूप में मानता है और उनके लिए समान रूप से अपनी सघन श्रद्धा को नियोजित किए रहता है। ऐसा भक्तियोगी ईश्वर को आत्मसमर्पण करके दैवी विभूतियों से सहज ही सुसंपन्न बनता है। ऐसी आत्माएँ जीवनमुक्त देवदूत कहलाती हैं। स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों का परिष्कार करने के लिए कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग का साधनाक्रम व्यावहारिक जीवन में उतारने से ही जीवनलक्ष्य प्राप्त करने की दिशा में अग्रसर हुआ जा सकता है। ❐

अनुक्रमणिका

- आवरण पृष्ठ—1 — 1
- आवरण पृष्ठ—2 — 2
- तीनों शरीरों का परिष्कार करें — 3
- प्रार्थना को प्रभावशाली बनाने के सूत्र — 5
- **दीपावली पर्व पर विशेष** अपव्यय से बचें — 6
- **प्राकृतिक आहार** कैल्सियम और उसकी आपूर्ति — 8
- **घरेलू चिकित्सा** सहजना एवं हारसिंगार के प्रयोग — 9
- माता के स्तनपान से शिशु का सर्वांगीण पोषण — 12
- किशोरावस्था और सावधानियाँ — 14
- ऋषियुग्म ने गृहस्थ को बनाया एक तपोवन — 17
- **आत्मीय अनुरोध** नवरात्र में गुरुसत्ता को समझने का प्रयास — 19
- **ज्ञातव्य** — 21
- अहंकार है, पतन का कारण — 23
- **कुरीति निवारण** विवाहों में हो आदर्शवादिता — 25
- सफलता के उच्च शिखर पर पहुँचने के सूत्र — 28
- निरर्थक भय से बचें — 31
- वयोवृद्ध माता-पिता की उपेक्षा न हो — 34
- गायत्री तपोभूमि के बैंक खातों का विवरण — 37
- आत्मदीपक जल रहे हैं (कविता) — 38
- आवरण पृष्ठ—3 — 39
- आवरण पृष्ठ—4 — 40

अक्टूबर-नवंबर, 2025 के पर्व-त्योहार

गुरुवार	02 अक्टूबर	विजयादशमी/ गांधी-शास्त्री जयंती	मंगलवार	21 अक्टूबर	दीपावली
शुक्रवार	03 अक्टूबर	पापांकुशा एकादशी	बुधवार	22 अक्टूबर	अन्नकूट/बेसतुबरस
सोमवार	06 अक्टूबर	शरद् पूर्णिमा	गुरुवार	23 अक्टूबर	भाईदूज
मंगलवार	07 अक्टूबर	वाल्मीकि जयंती	रविवार	26 अक्टूबर	लाभ पंचमी
शुक्रवार	10 अक्टूबर	करवा चौथ	शुक्रवार	31 अक्टूबर	अक्षय नवमी
सोमवार	13 अक्टूबर	अहोई अष्टमी	रविवार	02 नवंबर	देवप्रबोधिनी एकादशी
शुक्रवार	17 अक्टूबर	रमा एकादशी	बुधवार	05 नवंबर	गुरुनानक जयंती/ पूर्णिमा/देव दीपावली
रविवार	19 अक्टूबर	धनतेरस	शुक्रवार	14 नवंबर	बाल दिवस
सोमवार	20 अक्टूबर	रूप चतुर्दशी	शनिवार	15 नवंबर	उत्पत्ति एकादशी

प्रार्थना को प्रभावशाली बनाने के सूत्र

हमारी आकांक्षा, आवश्यकता एवं अभिलाषाओं की पूर्ति हेतु महामानवों ने तीन तरह के मार्ग निर्धारित किए हैं—(1) कर्म, (2) चिंतन और (3) प्रार्थना। तीनों के समन्वित प्रयासों के माध्यम से ही जीवनलक्ष्य की प्राप्ति संभव हो पाती है। प्रायः देखा यह जाता है कि आमतौर से व्यक्ति प्रथम दो मार्गों पर चलने का प्रयत्न तो करता है, परंतु तीसरे अति महत्त्वपूर्ण पक्ष को विस्मृत कर बैठता है—

प्रार्थना, उपासना का विधान भगवान के सान्निध्य की पूर्ति के लिए अध्यात्मवेत्ताओं द्वारा सुझाया गया है। यदि दैनंदिन जीवन में पाँच मिनट का भी समय इस निमित्त निकाला जा सके, तो उतने भर से उन दुष्प्रवृत्तियों से पीछा छुड़ाया जा सकता है, जो आएदिन सिर पर सवार होकर अनेकानेक प्रकार से त्रास देती रहती है। प्रार्थना को प्रभावशाली बनाने के लिए निम्न सूत्र बताए गए हैं—

प्रथम सूत्र है—जीवन-व्यापार के हर क्षेत्र में ईश्वर की साझेदारी को प्रमुखता देना। यही वह आधार है, जिसका अवलंबन लेने पर कर्त्तव्यों के प्रति जागरूकता बनी रहती है और दूरदर्शिता का विकास होता चलता है।

दूसरा सूत्र है—ईश्वर उपस्थिति का सतत आभास होते रहना। दैवी चेतना का कार्य मनुष्य की सहायता करने, उसे सदैव ऊँचा उठाने तथा विकासोन्मुखी बनाने का होता है। यदि यह आस्था जीवन में गहराई से जड़ जमा सके तो आत्मोत्कर्ष की दिशा में आगे कदम बढ़ा सकना भी कठिन नहीं है।

तीसरा सूत्र है—'पुकार' अंतःकरण की गहराई से निकले और वह इतनी भावनापूर्ण हो, जिससे परमात्मसत्ता का अनुदान-वरदान, स्नेह और सहयोग के रूप में बरसता स्पष्ट दिखाई देने लगे। अंतःकरण की सच्ची पुकार को परमात्मा कभी अनसुनी नहीं करता।

चौथा सूत्र है—प्रार्थना के समय चिंतन की दिशाधारा विधेयात्मक हो। इसमें स्वयं के साथ अन्यान्यों के कल्याण की भावना भी सन्निहित हो, तभी प्रार्थना का प्रत्युत्तर भी मिलता है। समर्थ सत्ता के समक्ष अपनी इच्छा-आकांक्षा रखते समय इस बात का ध्यान अवश्य रखा जाए कि उसमें कहीं संकीर्ण स्वार्थपरता तो प्रवेश नहीं कर रही है।

पाँचवाँ व अंतिम सूत्र है—अपना अनहित चाहने-सोचने वालों के प्रति भी सद्भावना का बने रहना। इन्हें सम्मति मिले, इसकी प्रार्थना करना। ऐसे व्यवहार से न केवल निज का अंतराल शुद्ध होता है, वरन प्रतिपक्षी को भी विनम्र बनाता है।

यह एक अकाट्य सत्य है कि लोक-कल्याण के निमित्त की गई प्रार्थना निश्चित ही सार्थक एवं प्रभावी होती है। जीवन का इसे एक अनिवार्य अंग बना लिया जाए तो लोक व परलोक दोनों सध जाते हैं। ❐

अपने को असमर्थ, अशक्त एवं असहाय मत समझिए।

दीपावली पर्व पर विशेष

अपव्यय से बचें

दीपावली पर्व पर नए खाताबही का पूजन किया जाता है, जिसमें आय-व्यय का हिसाब-किताब रखा जाता है। हमें फजूलखरची से बचना चाहिए।

बचत तभी हो सकती है, जब मितव्ययता से काम लिया जाए और मितव्ययी बनने के लिए आवश्यक है कि खरीद करने से पूर्व क्या खरीदना है? इसका निर्णय लेने का नियम बनाया जाए। इसलिए बजट बनाकर खरच करना मितव्ययी बनने का एक स्वर्णिम सूत्र है। साथ ही हर वस्तु को नकद खरीदने की आदत डाली जाए। इससे हमें यह मालूम होता रहता है कि कितना रुपया व्यय हुआ है और कितना बाकी बचा है। जो लोग नौकरी करते हैं, वे महीने भर का बजट बना सकते हैं। जिन्हें साप्ताहिक वेतन मिलता है, उन्हें सप्ताह भर की व्यय-योजना बना लेनी चाहिए और जो लोग खुला धंधा करते हैं, जिसमें कोई नियमित आमदनी नहीं होती, वे भी अपनी आमदनी का औसत निकालकर योजनाबद्ध ढंग से खरच कर सकते हैं तथा महीने-पंद्रह दिन का सामान घर में इकट्ठा लाकर रख सकते हैं; ताकि कहाँ कितना खरच करना है, यह सामने स्पष्ट रहे।

आवश्यक कार्यों में ही खरच करने का नियम बनाने के लिए आवश्यक है कि परिवार का हिसाब-किताब रखा जाए अर्थात यह नोट किया जाता रहे कि कब क्या खरच हुआ है? जो भी व्यय किया जाए, वह भले ही एक पैसा ही क्यों न हो, उसे नोट कर लिया जाए और क्या आमदनी हुई है, यह भी नोट करके रखा जाए। आय-व्यय की एक-एक पाई का हिसाब रखना फजूलखरची से बचने का एक अचूक उपाय है। इस प्रकार अपनी सीमित आमदनी में भी सुख-संतोष का जीवन व्यतीत किया जा सकता है।

परिवार की अर्थव्यवस्था नियोजन-कार्य पर गृहिणी का ही अधिकार रहता है। पुरुष फिर भी फजूलखरची कर सकता है, पर स्त्रियाँ इतनी अपव्ययी नहीं होतीं, वे आवश्यक कार्यों में ही खरच करना जानती हैं। यदि वे थोड़ा सोच-समझकर खरच करने लगें और कुछेक उन प्रवृत्तियों पर काबू पा लें, जो फजूलखरचों के अंतर्गत आ जाती हैं तो परिवार का आर्थिक संतुलन सुस्थिर हो जाता है। इस तरह की प्रवृत्तियों में शृंगार प्रसाधनों के प्रति आत्यंतिक रुचि, शौक और विलास सामग्रियों एवं नए फैशन के वस्त्रों को एकत्र करने का लगाव आ जाता है। इसके अतिरिक्त भी लापरवाही या असावधानी से अपव्यय होता है। इस तरह का अपव्यय रुपये-पैसों का अपव्यय नहीं माना जाता, पर परिवार की आर्थिक स्थिति पर तो उसका असर पड़ता ही है।

अच्छा तो यही है कि परिवार की व्यय-व्यवस्था समझदार गृहिणी के हाथों ही सौंप

दी जाए। पर ऐसा संभव न हो तो घर का बजट स्त्रियों की जानकारी में भी लाना चाहिए। न केवल गृहिणियों को, वरन पुत्रियों और पुत्रों को भी फैशन के रोग से बचाना चाहिए। यदि सस्ते कपड़े हों और उन्हें भी साफ-सुथरा रखा जाए, करीने से पहना जाए तो वे किसी भी अच्छे फैशन से नयनाभिराम लग सकते हैं।

परिवार का आर्थिक संतुलन केवल एक व्यक्ति द्वारा ही मितव्ययता बरतने से स्थिर नहीं रहता। उसके लिए तो परिवार के हर सदस्य को रुपया बचाने में दिलचस्पी रखना चाहिए, तभी आर्थिक संतुलन बनाने के लिए किए गए प्रयास सफल होते हैं। इसके लिए परिवार के प्रत्येक सदस्य को गृह-व्यवस्था में दिलचस्पी लेने की आदत डालनी चाहिए। गृह-व्यवस्था यदि विवेकपूर्वक की जाए तो परिवार के दूरगामी लक्ष्य भी आसानी से प्राप्त किए जा सकते हैं। आरंभ से थोड़ा-थोड़ाकर बचाया गया पैसा साधारण परिस्थिति के परिवारवालों के बच्चों को भी उच्च शिक्षा दिला सकता है। कहने का अर्थ यह है कि नियम व्यवस्था और क्रम प्रगति के सिद्धांत के अनुसार जीवन के हर क्षेत्र में जिस प्रकार उन्नति की जा सकती है, उसी प्रकार परिवार का स्तर भी ऊँचा उठाया जा सकता है।

सामान्य आय वाले परिवार अपनी आय के अनुसार अधिक आसानी से गुजारा कर सकते हैं, क्योंकि वे प्राथमिक स्तर से ऊँची आवश्यकताओं पर बिना किसी प्रकार का संकोच किए नियंत्रण रख सकते हैं। लोग अपनी प्रतिष्ठा गिर जाने के डर से ही आमदनी घट जाने पर भी अपनी फजूल आवश्यकताओं में कटौती नहीं कर पाते, पर यह डर व्यर्थ है। अपनी आय के अनुरूप ही साधारण भोजन लेना चाहिए, सस्ते वस्त्र पहनना चाहिए और मामूली मकान में रहना चाहिए। इस प्रकार साधारण स्तर पर जीते हुए अपनी आय को बढ़ाने के प्रयास किए जा सकते हैं।

सामान्य स्थिति के परिवारों में विभिन्न प्रवृत्तियों के व्ययशील लोग मिल जाते हैं। एक हैं जो 50-100 रुपये रोज की सिगरेट, गुटखा या चाय पी जाते हैं तथा दूसरे इस प्रकार के भी मिल जाते हैं, जो उन्हीं रुपयों से अपने परिवार के लिए दिनभर चलने लायक सब्जी खरीद लेते हैं। निश्चित ही दूसरा व्यक्ति अपने पैसों का सदुपयोग करता है, जबकि पहले वाला रुपये का दुरुपयोग कर रहा है। संसार में असंख्य लोगों ने साधारण स्तर से आगे बढ़कर समृद्धि की मंजिल छुई है। वे इसलिए सफल नहीं हुए कि उन्होंने परिश्रम किया, बल्कि उनकी सफलता का एक कारण यह भी रहा है कि वे अपने परिवार की अर्थव्यवस्था संतुलित रखे रहे। सफलता और समृद्धि की कुंजी हमारा संतुलित जीवन, मितव्ययी आदतें और अनुचित विलासिताओं का त्याग है। इन आदतों को, स्वभाव को अपनाकर कोई भी परिवार सरल और सादा जीवन व्यतीत करते हुए सुखी और संतुष्ट रह सकता है।

दीपावली पर्व पर श्री गणेश-लक्ष्मी-पूजन के समय धनलक्ष्मी का सदुपयोग सदैव ही श्रेष्ठतम करने का व्रत लेना चाहिए। पूज्यवर ने कहा है—"बचत ही आपकी असली आय है।" ❐

प्राकृतिक आहार

कैल्सियम और उसकी आपूर्ति

हमारे दैनिक जीवन में शरीर को स्वस्थ, सशक्त रखने के लिए आवश्यक मिनरल्स (खनिज-लवणों) में कैल्सियम की बड़ी भूमिका है। सभी फल, सब्जियों में प्रायः न्यूनाधिक मात्रा में कैल्सियम भी मिल जाता है। कैल्सियम का अच्छा सुलभ स्रोत दूध है, उसके बाद अनाजों में तिल सर्वोत्तम स्रोत है। जिनकी प्रकृति गरम है, उन्हें गुड़ की जगह देशी मिसरी या देशी खाँड़ का प्रयोग करना चाहिए।

क्या खाएँ—चोकरयुक्त आटे की रोटी, केला, संतरा, नारंगी, नीबू, टमाटर, पालक, आलू, गाजर, चुकंदर, अलसी, दूध, गुड़, तिल तथा मूँगफली, अखरोट, सेम, किशमिश, मुनक्का, अंगूर, अंजीर, गन्ना, मूली, अमरूद, गोभी, खीरा, पपीता, बेर, आदि खाएँ।

क्या न खाएँ—सफेदचीनी न खाएँ अर्थात सफेद चीनी से बनने वाली चाय, कॉफी, शरबत, आइसक्रीम, मिठाइयाँ, बिस्कुट आदि व्यंजन न खाएँ। सफेद चीनी में उपस्थित फास्फोरिक एसिड हमारे शरीर के कैल्सियम को बाहर निकाल देता है।

दैनिक आवश्यकता—1 ग्राम मात्रा कैल्सियम की सामान्यतौर से नित्य चाहिए।

कैल्सियम की कमी के लक्षण—(1) बालों का झड़ना (2) नाखून का स्वरूप विकृत होना। (3) दाँतों का क्षरण, कमजोर होना (4) बालकों का मिट्टी खाना, नाखून चबाना, अँगूठा चूसना (5) पसीना अधिक आना (6) पेट में कृमि होना (7) भोजन अधिक करना, परंतु पाचन ठीक न होना (8) जीवनी-शक्ति कमजोर होना (9) शरीर में अम्लता का बढ़ना।

शरीर में कैल्सियम का उपयोग—कैल्सियम का नियोजन विटामिन 'डी' के बिना नहीं होता है। 'डी' की उपस्थिति में ही कैल्सियम और फारफोरस के साथ मिलकर अस्थियों का निर्माण होता है।

विटामिन 'डी' न होने पर कैल्सियम का अवचूषण नहीं हो पाता है, युग निर्माण योजना के अगस्त—2025 के अंक में पृष्ठ, 14 पर विटामिन 'डी' के बारे में विस्तृत जानकारी प्रकाशित की गई है।

कैल्सियम का सही नियोजन हो उसके लिए थायराइड ग्रंथि स्वस्थ होनी चाहिए। थायराइड की गड़बड़ी से भी कैल्सियम की कमी होती है।

विटामिन डी पर्याप्त होना भी जरूरी है। अतः नित्य प्रातःकालीन धूप में बैठकर कम-से-कम 20 मिनट त्वचा पर धूप लगने देना चाहिए।

यदि हम इन सब सावधानियों को समझेंगे तथा प्रकृति की शरण में आकर प्राकृतिक खाद्यों को ग्रहण करेंगे तो कैल्सियम की कमी (डेफिशिएन्सी) से बचेंगे और सभी अंग, हड्डी, स्नायु, मांसपेशी आदि स्वस्थ-सशक्त रहेंगे। यदि कैल्सियम की कमी होगी तो स्नायविक दुर्बलता, अस्थितंत्र के रोग, कमजोरी, अपच आदि रोग होंगे। ❐

सहजना एवं हारसिंगार के प्रयोग

सहजना को सेजना, सैजना, मुनगा, मोरिंगा आदि विभिन्न नामों से जानते हैं। इसके पत्ते, फूल, फल, छाल सभी उपयोगी हैं।

आयुर्वेदिक मतानुसार गुण-दोष

भूख बढ़ाने वाला, दाह पैदा करने वाला, शुक्रवर्द्धक, हृदय के लिए हितकारी, कफ, वात, कृमिरोग, सूजन, मेदरोग तथा आँखों के लिए हितकर, विषनाशक है, सिरदरद दूर करता है। सहजना की हरे रंग की फलियों की सब्जी खाने का प्रचलन है। यह वातनाशक गुणों से भरपूर होने के कारण अत्यंत उपयोगी है।

सहजना के औषधीय प्रयोग

❋ **वातनाशक तेल**—सहजना की छाल का आंतरिक भाग एक किलो लेकर 5 किलो पानी में औटाएँ। जब आधा किलो काढ़ा शेष रहे, तब 1 लीटर सरसों के तेल में पकाएँ तथा ठंढा करके काँच की बोतल में भरकर रखें। इस तेल से नित्य मालिश करने से सब प्रकार के वात रोगों में लाभ होता है।

❋ **बाँयटे में**—सहजना की जड़ की छाल 20 ग्राम लेकर 500 ग्राम पानी में पकाएँ, जब पानी 125 ग्राम शेष बचे, तब आग से उतारकर ठंढा कर लें इसे छानकर पीने से लाभ होता है।

❋ **गाँठ होने पर**—सहजना का गोंद गाँठ पर लेप करने से गाँठ की सूजन मिटती है। धीरे-धीरे गाँठ समाप्त हो जाती है।

❋ **कान दरद में**—सहजना की जड़ का रस 2-4 बूँद कान में टपकाने से कर्णशूल मिटता है।

❋ **सायटिका में**—सहजना का पाक बनाकर सेवन करने से लाभ होता है।

पाक बनाने के विधि—250 ग्राम सहजना की गोंद लेकर घृत में तल लेना चाहिए, तत्पश्चात गेहूँ का आटा 500 ग्राम लेकर उसे 500 ग्राम घृत में सेंक (भून) लेना चाहिए, फिर 500 ग्राम गुड़ या खाँड़ की चासनी में 50 ग्राम सोंठ-चूर्ण तथा उपरोक्त सभी सामग्री मिलाकर छोटे-छोटे लड्डू बनाकर प्रतिदिन सुबह-शाम 1-1 लड्डू सेवन करने से लाभ होता है।

❋ **आँखों के दरद में**—वाग्भट के अनुसार वात, पित्त एवं कफ किसी भी दोष के कारण आँखों में दरद हो तो सहजना के पत्तों का रस लेकर उसमें समान मात्रा में शहद मिलाकर आँखों में आँजने से शीघ्र लाभ होता है।

❋ **जलोदर (ड्राप्सी)**—सहजना की जड़ की छाल का काढ़ा बनाकर 30 ग्राम की मात्रा में पिलाने से जलोदर, शरीर के आंतरिक अंगों की सूजन तथा यकृत (लिवर) संबंधी रोगों में लाभ होता है।

❋ **मूत्र की रुकावट में**—(1) सहजना के फूलों को 10 ग्राम लेकर पीस लें तथा मिसरी सहित एक गिलास पानी में मिलाकर पिलाने से मूत्रवृद्धि होती है। रुकावट दूर होती है।

(2) सहजना के फूल न मिलें तो सहजना के पत्तों का क्वाथ बनाकर पीने से भी लाभ होता है।

❋ **पथरी में**—सहजना के पत्तों का क्वाथ बनाकर प्रतिदिन खाली पेट गुनगुना क्वाथ पिलाने से पथरी टूट-टूटकर निकलने लगती है।

❋ **आंतरिक घाव में**—सहजना की जड़ का रस 10 ग्राम लेकर उसमें 10 ग्राम शहद के साथ चटाने से लाभ होता है।

❋ **दाढ़ के दरद में**—सहजना की गोंद 3 ग्राम मुँह में रखकर चूसने से दाढ़ का दरद बंद हो जाता है। दाढ़ों की सड़न दूर होती है।

❋ **खाज-खुजली में**—महर्षि चरक के अनुसार सहजना के पत्तों का रस 200 ग्राम, सरसों का तेल 250 ग्राम में डालकर पकाएँ, जब तेल मात्र शेष रहे, तब छानकर ठंढा कर लें तथा 10 ग्राम कपूर मिलाकर रख लें। इस तेल की मालिश से खाज-खुजली तथा सूजन मिटती है।

❋ **हाथीपाँव (श्लीपद) में**—सहजना की जड़ को पीसकर गरम करें तथा सुहाता गरम लेप करने से लाभ होता है।

❋ **मूत्रकृच्छ में**—सहजना की गोंद 10 ग्राम, 200 ग्राम दही के साथ 7 दिनों तक खाने से लाभ होता है।

❋ **घुटनों के दरद में**—सहजना के बीजों को पानी में पीसकर गरम लेप करने से दरद मिटता है।

❋ **आंत्रकृमि में**—सहजना की फली की सब्जी बनाकर खाने से आँतों के कृमि नष्ट होते हैं।

❋ **पारी के बुखार में**—सहजना की जड़ एक तोला लेकर उसका काढ़ा बनाकर पिलाने से बार-बार आने वाला ज्वर दूर होता है।

❋ **अपस्मार (हिस्टीरिया) एवं पारी के बुखार में**—सहजना की जड़ 10 ग्राम लेकर, कूटकर उसका काढ़ा बनाकर पिलाने से लाभ होता है।

❋ **रतौंधी में**—सहजना की कोमल डालियों को पीसकर, रस निकालकर, शहद मिलाकर आँखों में आँजने से लाभ होता है।

❋ **कान की सूजन में**—सहजना की छाल और राई को बराबर मात्रा में पीसकर थोड़ा गरम करके लेप करने से लाभ होता है।

❋ **मुँह के छालों में**—सहजना की जड़ का काढ़ा बनाकर कुल्ले एवं गरारे करने से लाभ होता है।

❋ **फोड़ा होने पर**—सहजना की छाल को पीसकर गरम लेप करने से फोड़े की सूजन उतरती है।

हारसिंगार (पारिजात) के औषधीय प्रयोग

पारिजात को हारशृंगार, हारसिंगार, कृष्णवेणी, गुलजाफरी, जया पारवती, खरामली आदि नामों से जानते हैं। कोरल

जेस्मिन इसका अँगरेजी नाम है। पारिजात के वृक्ष 5 से 15 फीट तक ऊँचे होते हैं। इसके फूलों की पंखड़ियों का रंग सफेद तथा फूलों की डंडी का रंग केसरिया होता है। इन फूलों की सुगंध मनभावन होती है। प्रात: सूर्योदय की वेला में पेड़ों के नीचे फूलों का भंडार पड़ा दिखाई देता है। हारसिंगार के फूलों का सेवन मधुमेह तथा संधिवात के रोगी के लिए लाभप्रद होता है। फूलों की मात्रा 10-12 नग नित्य होनी चाहिए।

❋ **सायटिका में**—पारिजात के 15-20 पत्तों को 2 गिलास पानी में उबालें। जब आधा गिलास पानी शेष रहे, तब छानकर पीने योग्य गरम रहे, पी लें। यह प्रयोग नित्य प्रात: खाली पेट करें। यह प्रयोग 2 माह तक चलाएँ। रक्तशोधक प्रयोग होने से अन्य वात रोगों में भी लाभ होता है। वातकारक खाद्यों से परहेज रखें। यह अनुभूत प्रयोग है।

❋ **जीर्ण ज्वर में**—हारसिंगार के पत्तों के 15 ग्राम रस में शहद 15 ग्राम मिलाकर नित्य पिलाने से लाभ होता है।

❋ **पित्त विकार में**—हारसिंगार के पत्तों का रस 15 ग्राम निकालकर मिसरी मिलाकर पिलाने से लाभ होता है।

❋ **मासिक धर्म की अधिकता में**—हारसिंगार की कोमल पत्तियाँ 5-6 लेकर 2 कालीमिर्च के साथ पीसकर पानी के साथ पिलाने से मासिकधर्म का रक्ताधिक्य जाना बंद होता है।

❋ **बवासीर में**—हारसिंगार के बीज 100 ग्राम, 30 ग्राम कालीमिर्च के साथ पीसकर, छानकर 3-3 ग्राम की गोलियाँ बनाकर ठंढे पानी के साथ नित्य प्रात: 2-2 गोली सेवन करने से लाभ होता है।

पानी में भिगोकर 4 अंजीर, 8 मुनक्का सुबह-शाम नित्य सेवन कराना चाहिए। कब्ज न हो ऐसा खाद्य सेवन करें। ❐

एक बार एक धनी सज्जन श्रीरामकृष्ण परमहंस के पास पहुँचे। उन्होंने परमहंस जी से धन लेने का विनम्र आग्रह किया—"महाराज! इस धनराशि को आप स्वीकार करें, इसे आप परोपकार के कार्यों में लगा दीजिएगा।" परमहंस जी मुस्कराकर बोले—"भाई! मैं तुम्हारा धन ले लूँगा तो मेरा चित्त उसमें लग जाएगा और मेरी मानसिक शांति भंग होगी।" धनिक ने तर्क दिया—"महाराज! आप तो परमहंस हैं, आपका मन उस तेल-बिंदु के समान है, जो कामिनी-कंचन के महासमुद्र में स्थित होकर भी सदैव उससे अलग रहेगा।" परमहंस गंभीर हो गए—"भाई! क्या तुम्हें ज्ञात नहीं कि अच्छे-से-अच्छा तेल भी यदि बहुत दिनों तक पानी में रहे तो वह अशुद्ध हो जाता है और उससे दुर्गंध आने लगती है।" धनी को बोध हुआ, उन्होंने अपना आग्रह छोड़ दिया और धन का उपयोग स्वयं ही परोपकार में कर दिया।

माता के स्तनपान से शिशु का सर्वांगीण पोषण

आज यह धारणा बन गई है कि बच्चे को दूध पिलाने से माता का स्वास्थ्य दुर्बल होता है। इसलिए शिशुओं को ऊपरी दूध पिलाना चाहिए, ताकि माता की स्वास्थ्य-रक्षा संभव हो सके। सुसंपन्न और शिक्षित लोग प्रायः ऐसा ही करते हैं। यह एकांगी चिंतन है। जिस बालक को आमंत्रित करके बुलाया गया है, उसके परिपोषण एवं विकास के संबंध में कृपणता क्यों बरती जाए?

नवजात शिशु का पाचनतंत्र इतना कोमल और संवेदनशील होता है कि माता का दूध ही सरलतापूर्वक पच सके। जिस शरीर के भीतर रहकर उसने अपना अस्तित्व विकसित किया है, उसी के रासायनिक पदार्थ अनुकूल पड़ते हैं। पशुओं के दूध तथा अन्यान्य खाद्य पदार्थों को पचाने की क्षमता तो धीरे-धीरे ही विकसित होती है। जन्मकाल से लेकर कई महीने तक पेट की स्थिति इसी स्तर की बनी रहती है कि वह माता के दूध को ही ठीक तरह पचा सके और उससे उचित एवं अनुकूल पोषण प्राप्त कर सके।

नवजात असहाय बालक की सेवा-शुश्रूषा, देख-भाल, स्नेह-दुलार के लिए ही नहीं, उचित आहार के लिए भी माता की ओर ही आशा भरी दृष्टि से निहारना पड़ता है। यदि उस आंचल में भी उसे शरण न मिले तो किसका मुँह जोहे, किसका पल्ला पकड़ें? यों उसकी क्षुधा शांत करने के लिए तो डिब्बे का, पशुओं का दूध भी काम दे सकता है, पर उसकी वह आवश्यकता जिसमें न केवल शरीर का, वरन प्राणों का भी रस टपकता है, अन्यत्र कहाँ से मिलेगा। पति और पत्नी भी कहने को तो एकत्व का दावा करते हैं, पर तात्त्विक दृष्टि से माता और बालक की एकात्मकता ही सही सिद्ध होती है। पति-पत्नी अपना रिश्ता तोड़ और नया संबंध जोड़ सकते हैं, पर माता और संतान के बीच इस जोड़-तोड़ की कोई गुंजाइश नहीं है। जन्म देने तक तो उदरस्थ बालक माता की सत्ता में घुला ही रहता है। प्रसव के उपरांत भी बहुत समय तक यह परिपोषण चलता रहता है, घटोत्तरी तो तब आरंभ होती है, जब बालक को संसार की अन्य वस्तुएँ आकर्षित करने लगती हैं।

गर्भस्थ शिशु को सींचने की प्रक्रिया प्रसव के उपरांत भी बहुत समय तक माता को जारी रखनी पड़ती है। यह संपर्क-सूत्र अन्य आधारों के साथ-साथ स्तनपान के साथ विशेष रूप से जुड़ा रहता है। पेट में माता का परिपोषण किसी कारणवश शिथिल हो जाए तो भ्रूण की सत्ता अविकसित स्थिति में ही पड़ी रहेगी और अपना अस्तित्व खो बैठेगी। यह तथ्य जन्म के उपरांत भी जारी रहता है और उसमें क्रमशः ही कमी आती है। नवजात शिशु को बहुत समय तक माता के दूध की आवश्यकता बनी रहती है, क्योंकि शारीरिक एवं मानसिक पोषण के अतीव उपयोगी तत्त्व उसी केंद्र से मिल सकते हैं, जिसने उसे जन्म दिया है। इतनी अधिक अनुकूलता अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं हो सकती, जितनी कि बच्चे को माता से मिलती है।

बालक के शारीरिक, मानसिक पोषण के साथ उसके समग्र व्यक्तित्व के अंत:करण के विकास की भी आवश्यकताएँ रहती हैं; इनकी पूर्ति माता के भावनात्मक एवं रासायनिक अनुदानों से ही हो पाती है। स्तनपान में अवरोध खड़ा होने पर बालक तो निश्चित रूप से घाटे में रहता है। शिशु आहार के नाम पर जिन वस्तुओं का गुणगान किया जाता है, वस्तुत: उसकी उत्कृष्टता माता के दूध की तुलना में शतांश भी नहीं होती। यों बहकाने को तो द्रोणाचार्य ने अपने बेटे अश्वत्थामा के दूध माँगने पर खड़िया मिट्टी का सफेद पानी पिलाकर भी काम चला लिया था। माता के दूध से वंचित बालक को जिस-तिस वस्तु के सहारे इसी प्रकार अपना गुजारा करना पड़ता है। ऐसी स्थिति उत्पन्न करना किसी सहृदय माता के लिए किस प्रकार संतोषजनक हो सकती है। ऐसा मोटे तर्कों और भौतिक स्वार्थों को आगे रखकर नहीं किया जा सकता। ऐसे मार्मिक प्रसंगों में तथाकथित स्वास्थ्य एवं सौंदर्य रक्षा की बात सोचते समय बालक के विकास और भविष्य को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।

शरीर विज्ञान के जानकार भली प्रकार समझते हैं कि प्रकृति हर प्राणी के शरीर में सामयिक आवश्यकताओं के अनुरूप कई प्रकार के अतिरिक्त उत्पादन करती है। उनका सही प्रयोग होता रहे तो इससे स्वास्थ्य बिगड़ता नहीं, वरन उलटी सुरक्षा होती है। शिशु जन्म से पूर्व ही माता का दुग्ध संस्थान विकसित एवं सक्रिय हो जाता है। प्रकृति प्राणी की आवश्यकताओं का भली प्रकार ध्यान रखती है और उनकी पूर्ति के साधन जुटाती रहती है। इस स्वाभाविक क्रिया-प्रक्रिया में किसी विपत्ति की आशंका नहीं करनी चाहिए। उत्पादन-विसर्जन का चक्र हर क्षेत्र में घूमता है और क्षतिपूर्ति की व्यवस्था अनायास ही होती रहती है।

प्रसव के उपरांत प्रोजेस्ट्रोन अकेला ही शरीर को सामान्य प्रक्रिया के अंतर्गत ही शिशु आहार के लिए आवश्यक दुग्ध बनाते रहने का काम सँभाल लेता है। इस प्रक्रिया के अंतर्गत दुग्ध-स्राव के कारण होने वाली क्षति की पूर्ति भी साथ-साथ होते चलने की व्यवस्था है। यदि दुग्ध-स्राव बंद कर दिया जाए तो प्रकृति उलटकर प्रोजेस्ट्रोन को निष्क्रिय बनाती है, अन्यथा दूध बनते रहने पर भी उसके निकलने का प्रबंध न रहने के कारण उस संस्थान में भयंकर पीड़ा एवं अर्बुद आदि उठ खड़े होने का संकट हो सकता है। उपरोक्त हार्मोन जब अपना कार्य समेटता है तो उसके साथ ही माता को पयपान के कारण होने वाली क्षतिपूर्ति के अतिरिक्त आधार भी बंद हो जाते हैं। दूध पिलाने के बदले प्रकृति से जो अन्य अतिरिक्त अनुदान मिल रहे थे, उनका स्रोत बंद हो जाने से माताएँ किसी लाभ में नहीं रहतीं, वरन बच्चे को उचित पोषण से वंचित करके अपने गौरव से गिरती ही हैं।

माता के दूध में कई अतिरिक्त पदार्थ हैं, जो पशुओं से प्राप्त अथवा रसायननिर्मित पदार्थों से बने दूध से संभव नहीं। रक्त के ग्लूकोज से लेक्टोज, अमीनो एसिड से प्रोटीन बनती है। ये तीनों पदार्थ माता के दूध में ही उस स्तर के पाए जाते हैं, जिसमें शिशु-पोषण की संतुलित व्यवस्था बन सके। स्तनपान से शिशु को न केवल पूर्ण पोषण मिलता है बल्कि भावनात्मक स्नेह आत्मीयता की परिपूर्ति भी सूक्ष्मत: शिशु को मिलती है। माँ का दूध शिशु के लिए अमृत तुल्य है जिसकी उपलब्धि हर जननी को अवश्य ही शिशु के लिए करानी चाहिए। ❐

किशोरावस्था और सावधानियाँ

किशोरों की सभी मानसिक विकृतियों का उद्भव-केंद्र कुसंग होता है। अतः उनकी संगति का ध्यान रखा जाना अत्यावश्यक है।

किशोरों के संदर्भ में दो बातें ध्यान में रखनी चाहिए, एक तो यह कि किशोर के अंदर नई शक्ति की अभिवृद्धि हुआ करती है। वह नूतन शक्ति-स्फूर्ति हर समय उसके अंग-प्रत्यंगों में हिलोरती रहती है। वह हर समय कुछ-न-कुछ करते रहना चाहता हैं। खाली बैठ सकना उसके लिए सबसे कठिन होता है।

दूसरे यह कि इस आयु में उसका कार्यक्षेत्र घर से अधिक बाहर हो जाता है। वह समान वय के अधिकाधिक लोगों से मैत्री एवं प्रेम के संबंध स्थापित करना चाहता है। विपरीत लिंगी समवयस्कों के प्रति भी उसमें तीव्र आकर्षण पैदा होता है। सौंदर्य श्रेष्ठता, अग्रगामिता के प्रति वह तेजी से खिंचाव महसूस करता है। इन क्षेत्रों में उसे जो लोग बड़े-बड़े दीखते हैं, उनसे वह व्यक्तिगत संपर्क स्थापित करना चाहता है।

यदि समाज का वातावरण उत्कृष्टता की प्रधानता वाला हो और समाज में सचमुच श्रेष्ठ लोगों की ही प्रतिष्ठा हो, तब तो किशोरों के लिए अधिक चिंता की आवश्यकता अभिभावकों को न पड़े। वे स्वयं श्रेष्ठता की प्रतिस्पर्द्धा में जुट जाएँ। किंतु अभी तो स्थिति सर्वथा भिन्न है। विलासी रहन-सहन, अनुचित सुविधाएँ पाने वाली स्थितियाँ, इन सबके प्रति अभिभावकों, अध्यापकों, युवकों, समवयस्कों में खिंचाव तथा प्रशंसा का भाव किशोर हर पग पर देखता है। अतः उसको यही सब मनुष्य की वास्तविक विभूतियाँ प्रतीत होने लगती हैं। वह वैसे ही जीवनक्रम को अपनाने में शौर्य और शान समझ बैठता है।

ऐसी स्थिति में अभिभावकों का कर्त्तव्य हो जाता है कि वे किशोर के प्रति तनिक भी उपेक्षा न बरतें। उसकी व्यस्तता एवं विकास, दोनों का ध्यान रखें। व्यस्तता के लिए उसे खेल-कूद, व्यायाम और अन्य सामूहिक गतिविधियों में अधिकाधिक भाग लेने की प्रेरणा दी जाए। सामूहिक खेलों एवं अन्य सामूहिक कार्यक्रमों में अच्छाइयाँ ही होती हैं। उनसे सदा कुछ-न-कुछ सत्प्रेरणा एवं सत्प्रशिक्षण ही प्राप्त होता है।

दोष-दुर्गुणों को कोई भी खुलकर नहीं सिखाता। अपराधी-दुष्कर्मी भी सबके सामने अच्छी बातें ही करते हैं। गलत प्रवृत्तियाँ अकेले में सीखी-सिखाई जाती हैं। जब दो-चार गलत प्रवृत्तियों वाले किशोर और युवक एकत्र होते हैं और वह भी अकेली, सुनसान जगह में, तभी गंदी बातों की चर्चाएँ होती हैं और गलत व्यवहार भी सिखाया जाता है।

क्या करें

कुसंग के डर से किशोरों का घर से बाहर निकलना बंद नहीं करें; ध्यान रहे कि उन्हें एकाकी संगति का भी मौका न दिया जाए। प्रयास यह रहे कि सामूहिक गतिविधियों में तो वह खुलकर भाग ले, किंतु व्यक्तिगत घनिष्ठता वह लोगों से अधिक न बढ़ा सके। इस हेतु घर का वातावरण ऐसा होना चाहिए कि उसको एकाकीपन न लगे। घर में उसकी रुचि एवं योग्यता के ऐसे काम दिए जाएँ, जिनसे उसकी शक्ति का उपयोग हो, उसमें सत्संस्कार पड़ें, उसके मनोवेगों को सही दिशा मिले और उसका मनोरंजन भी हो। घर में ही कई तरह के सुगम खेलों की व्यवस्था हो। घर के लोग मिलकर खेलें—'इनडोर' और 'आउटडोर दोनों तरह के खेलों की घर में ही व्यवस्था अधिक कठिन नहीं। बैडमिंटन, कैरम, ताश, शतरंज, अंत्याक्षरी आदि घर में ही खेले जा सकते हैं। किंतु इस बात का भी ध्यान रहे कि घर के सदस्यों में इन खेलों का नशा न हो। जो पिता या भाई-बहन शतरंज, कैरम खेलने में तल्लीन होकर खाना-पीना या आवश्यक काम निपटाना भी भुला बैठते हैं; वे किशोरों की इनमें वैसी अतिरेकी रुचि जगने से उन्हें रोक नहीं सकते, जिसके कारण अध्ययन एवं नियमित दिनचर्या पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

बागवानी, सिलाई-कढ़ाई अन्य विविध गृह-शिल्प, नाटक-एकांकी, प्रहसन-अभिनय एवं अध्ययन-वाचन के अभ्यास की भी घर में व्यवस्था जुटाई जा सकती है। किशोरों को न तो खाली, बेकार रहने दिया जाए और न ही मनमाने तौर पर घूमने दिया जाए।

इस आयु में किशोर-किशोरियों के भीतर विशेष रासायनिक परिवर्तन होते हैं। यौनांग में भी परिवर्तन होता है। अतः उन्हें यौन-स्थानों की स्वच्छता की जानकारी दी जाए; अन्यथा वहाँ गंदगी से गरमी और उत्तेजना पैदा होती है।

यौनांग की स्वच्छता की जानकारी देने के साथ ही उन्हें उनसे संबंधित सामान्य जानकारियाँ भी दे दी जाएँ। यदा-कदा यौन-उत्तेजना की स्वाभाविकता बताई जाए। इसके प्रकृतिगत कारण समझा दिए जाएँ। उन्हें बताया जाए कि शरीर के भीतर पैदा होने वाले नए हॉर्मोन्स ही इस आवेग के आधार हैं। इनमें बहुत अधिक शक्ति होती है। इस शक्ति को बचाकर रखने से धृति, स्मृति, बल, विवेक की वृद्धि के लिए आवश्यक ऊर्जा संचित-संगृहीत होती है। इससे संबंधित अच्छा साहित्य पढ़ने को दिया जाए। यौन-शक्ति के दुरुपयोग से होने वाली हानियाँ भी विस्तार से समझाई जाएँ। स्वास्थ्य-नाश, मन का बिखराव, बुद्धि की दुर्बलता, ओजहीनता से जीवन में उत्पन्न होने वाले हर प्रकार के अभावों और आपदाओं तथा हताश कुंठाओं का वर्णन किया जाए।

कन्याओं को तो इसके बारे में और अधिक जानकारी माँ के द्वारा मिलनी चाहिए। लड़के-लड़कियाँ दोनों को समझाया जाए कि इस वय-संधि में अकेलेपन से बचना आवश्यक है; क्योंकि अकेले में यदि भीतर कसमसा रही शक्ति को किसी कारण से उत्तेजना मिल ही गई, तो उसे सँभालना कठिन हो जाता है। अतः एकाकीपन से सदा बचें। जब कभी उत्तेजना उत्पन्न हो, तो बाहर निकल पड़ें, भीड़ में या समूह में पहुँच जाएँ, टहलने लगें, ठंडे जल से

स्नान कर लें, कोई अच्छी पुस्तक पढ़ने लगें या किसी महापुरुष-आदर्श पुरुष के बारे में विचार करने लगें, उनका ध्यान करें।

प्रेमपत्र का स्थान आज मोबाइल ने ले लिया है। इसके खतरे भी लड़कियों को ठीक से समझा दिए जाएँ। एक तो स्वयं के शील की रक्षा के लिए सौजन्य एवं सौम्यता बनाए रखने पर निरंतर बल दिया जाए। नवीन उत्साह में लड़कियाँ सामान्य पत्र-व्यवहार तथा एस.एम.एस. को मामूली समझ बैठती हैं और फिर जन्मभर पछताती हैं। इन सारी बातों की जानकारी देकर, आवश्यक सतर्कता एवं निगरानी बरतते हुए किशोरों के व्यक्तित्व के ठीक से विकसित होने में मदद करनी चाहिए। ❑

आजीवन सदस्य कृपया ध्यान दें

आपने जब आजीवन सदस्यता स्वीकार की थी, तब से अब तक महँगाई इतनी अधिक बढ़ चुकी है कि पत्रिका की आजीवन सदस्यता का निर्वहन कर पाना कठिन हो रहा है। अब पूर्व की सुरक्षानिधि में आजीवन सदस्यता बनाए रखना संभव नहीं जान पड़ता। जो आजीवन सदस्य रुपये 150 (सन् 1987) में बने थे, उन्हें अभी तक पत्रिका भेजी जा रही है; जबकि वार्षिक चंदा रुपये 12 (सन् 1987) से बढ़कर रुपये 150 हो गया है— भविष्य में और भी बढ़ता रहेगा। ऐसी स्थिति में आजीवन सदस्यता को पुरानी शर्तों पर जारी नहीं रखा जा सकेगा।

अब नई व्यवस्था के अनुसार आजीवन सदस्यता 20 वर्ष तक सीमित रहेगी। उसका अब चंदा रुपये 3000/- होगा। हम सबकी यही अपेक्षा है कि जो श्रद्धा-स्नेह का संबंध लंबे समय से बना हुआ है, वह और भी प्रगाढ़ होगा। युग निर्माण योजना का आलोक आपको एवं अन्य परिजनों को आलोकित करता रहेगा।

इसके लिए हम आपके समक्ष निम्न विकल्प प्रस्तुत कर रहे हैं—

(1) आपका आजीवन शुल्क जो भी जमा है, उसे काटकर शेष रुपया और भेज दें, ताकि आपकी आजीवन सदस्यता (20वर्षीय) बनी रहे। राशि बैंक ड्राफ्ट/चैक/से RTGS/ NEFT भेजी जा सकती है।

(2) आपकी आजीवन सदस्यता समाप्त कर दी जाए एवं जमा सुरक्षानिधि वार्षिक चंदा में ट्रांसफर कर दी जाए। उस राशि से वार्षिक चंदा रुपये 150/- के हिसाब से जब तक का चंदा बने, युग निर्माण योजना भेज दी जाए।

(3) यदि किन्हीं कारणोंवश ऐसा संभव न हो पा रहा हो तो अपने बैंक खाते की जानकारी भेजने का अनुग्रह करें, जिससे आपको राशि वापस भेजी जा सके। विवरण मिलने पर आपके खाते में सीधे रुपया भेज दिया जाएगा।

पत्र-व्यवहार में अपनी सदस्य संख्या, नाम, पूरा पता, फोन नंबर, ई-मेल आई.डी. का उल्लेख अवश्य करें। पूर्ण विवरण के साथ अपनी सहमति का पत्र डाक/ई-मेल द्वारा भेजने का अनुग्रह करें। गायत्री तपोभूमि का वाट्सअप नं. 7055514422 भी उपलब्ध है आवश्यकतानुसार वाट्सअप नं. का भी उपयोग कर सकते हैं।

ऋषियुग्म ने गृहस्थ को बनाया एक तपोवन

गृहस्थ देवसंस्कृति का केंद्र है। संस्कृति के विविध पहलू, विभिन्न आयाम इसी केंद्र के सहारे प्रकट-विकसित होते हैं। सामान्यक्रम में गृहस्थ जीवन का जो खाँचा-ढाँचा दिखाई देता है, उसमें यह बात भले ही अप्रासंगिक या अतिशयोक्तिपूर्ण लगे, परंतु यदि अपनी संस्कृति की मर्यादानुरूप इसे अपनाया जाए, तो फिर यही तपोवन साकार होता है। साधक प्रवर पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी के जीवन में यही तथ्य खरा, सही और सटीक प्रमाणित हुआ। गृहस्थ के संयमित, मर्यादित एवं आदर्शनिष्ठ आचरण के द्वारा उन्होंने सही मायने में घर-परिवार को तपोवन का स्वरूप प्रदान किया। यहीं पर संयम, सेवा एवं सहिष्णुता की साधना करके वे संस्कृति पुरुष और लक्ष-कोटि जनों के परमपूज्य गुरुदेव बने।

साधनाकाल में ही उनके गृहस्थ जीवन की शुरुआत हो गई थी। वंदनीया माताजी ने आकर यहाँ संस्कृति संजीवनी की फसल उगाई। 'गृहस्थ' संस्कारों की पौधशाला ही तो है, जहाँ परिवार के सभी सदस्यों को उनकी स्थिति के अनुरूप संस्कार मिलते हैं। प्यार-सुधार के संस्कारपूर्ण वातावरण में यहाँ परिवार के सभी स्वजन सुसंस्कृत बनते हैं। वंदनीया माताजी एवं परमपूज्य गुरुदेव की गृहस्थी कुछ ऐसी ही रही। उनके गृहस्थ जीवन के अगणित प्रसंग हैं, असंख्य बातें हैं। इन सभी में यदि एक तथ्य हर कहीं है, तो वह है—**प्यार** और **संस्कार**। हर पहलू से, हर आयाम से इन्हीं दो की झलक मिलती है।

गुरुदेव-माताजी इन दोनों में से कौन बड़ा, कौन छोटा? यह चर्चा निरी महत्त्वहीन है; क्योंकि ये दोनों, दो दिखते हुए भी दो थे ही नहीं। जीवन एवं प्राण, काया एवं श्वास, सूर्य एवं प्रकाश, चंद्रमा एवं चाँदनी, यही नाता था दोनों में। दोनों ही एकदूसरे के प्रति गहराई से अर्पित-समर्पित थे। उनका सब कुछ तो एक था। यह सच्चाई उनसे मिलने वाले भी अनुभव करते रहते थे। न जाने कितने प्रसंग हैं, जब परिजनों ने पाया कि जो पहले वंदनीया माताजी ने कहा, वही बाद में परमपूज्य गुरुदेव ने बताया अथवा जो पहले गुरुदेव ने कहा, वही बाद में वंदनीया माताजी ने बताया। यह अभेद, एकत्व मात्र आध्यात्मिक या अतींद्रिय प्रसंगों तक सीमित न था। सामान्य जीवनक्रम में, रोजमर्रा के कामों में इसकी उतनी ही झलक मिलती थी। दोनों की नित्य एकता-परस्पर का अविराम साहचर्य हर कहीं झलकता था।

मथुरा के जीवनकाल में वंदनीया माताजी पत्र पढ़कर सुनाती थीं, परमपूज्य गुरुदेव जवाब लिखते थे। जिस तरह से पत्र-लेखन आदि गुरुदेव के द्वारा किए जाने वाले कामों में माताजी सहयोग देती थीं; ठीक उसी तरह माताजी के घर-गृहस्थी के सामान्य काम-काज में गुरुदेव भी हाथ बँटा देते थे। ऐसे प्रसंग पुराने परिजनों द्वारा आज भी सुने जा सकते हैं। उनके दांपत्य

संबंध दिव्य एवं अतिमानवीय होते हुए भी मानवीय सहृदयता, घनिष्ठता, आत्मीयता एवं प्रेम का उज्ज्वल उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

जहाँ तक परिवार की बात है, तो उन दोनों ने कभी भी अपने परिवार को अपनी संतानों तक ही सीमित नहीं माना। हालाँकि अपनी संतानों को उन्होंने अच्छी शिक्षा दिलाई, उत्तम-उत्कृष्ट संस्कार दिए। अपनी वसीयत एवं विरासत के रूप में उन्हें उज्ज्वल प्रेरणाएँ एवं आदर्शनिष्ठा सौंपी, पर उनके मन में परिवार के स्वजनों के प्रति जो कर्त्तव्यभाव था, उसकी सीमा इससे कहीं अधिक बृहत्तर थी। उसकी परिधि अपनी सतानों से कहीं अधिक विशाल एवं विराट थी।

गुरुदेव-माताजी का अपना सबसे छोटा परिवार अखण्ड ज्योति परिवार था। सही मायने में इसे ही उनके, गृहस्थ जीवन की शुरुआत कहें तो उचित होगा, क्योंकि अखण्ड ज्योति पत्रिका और अपने हस्तलिखित पत्रों के माध्यम से वे अपने बच्चों को शिक्षा एवं संस्कार देने में ही लगे थे। उनके द्वारा विनिर्मित गृहस्थ का तपोवन इसी व्यापक दायरे में फैला था, इस अखण्ड ज्योति परिवार में बात शिक्षा एवं संस्कार तक ही सीमित न थी। प्यार, दुलार, अपनत्व, ममता, झिड़की, फटकार, मनुहार—सभी कुछ इसमें शामिल था। बच्चों पर माँ-बाप का अधिकार होता है, तो बच्चे भी माँ-बाप पर अपना पूरा अधिकार जताते हैं।

मथुरा के दिनों का ही एक प्रसंग उन दिनों से जुड़े एक परिजन बड़े चाव से सुनाते थे। उनके अनुसार, एक दिन वे देर रात तकरीबन 12 बजे अखण्ड ज्योति संस्थान पहुँचे। सब लोग सो चुके थे। दरवाजा खटखटाने पर वंदनीया माताजी ने दरवाजा खोला। बड़े प्यार एवं अपनत्व से उन्हें अंदर बिठाया। घर-परिवार, निजी जीवन की थोड़ी चर्चा के बाद भोजन का उपक्रम हुआ। माताजी ने पराँठे बनाए और उन्होंने खाए। इसके बाद उन्होंने निवेदन किया, माताजी गुरुदेव से मिलवा दो। माताजी ने समझाया, बेटा सुबह मिल लेना। इस पर वह परिजन दुःखी हो गए। कहने लगे, हम तो गुरुजी से मिलने भागे-भागे चले आए, लेकिन गुरुजी तो मिलेंगे ही नहीं। तभी गुरुजी अपने कमरे से निकलकर आ गए और बोले—"कोई बात नहीं, मिल लो। बच्चों का हठ तो माँ-बाप को रखना ही पड़ता है, पर अभी तुम सो जाओ, बातें सुबह आराम से करेंगे।"

ऐसी पारिवारिक भावनाएँ बोई थीं गुरुदेव ने। इन्हीं की व्यापकता-विशालता आज कोटिजनों को अपने में समेटे युग निर्माण मिशन में दिखाई पड़ रहीं हैं। छोटी शुरुआत धीरे-धीरे बड़ी हुई। अखण्ड ज्योति परिवार और अधिक बड़ा होकर गायत्री परिवार बना। गुरुदेव मथुरा से शांतिकुंज हरिद्वार चले गए। इसे अन्य शब्दों में कहें, तो गुरुदेव का गृहस्थ जीवन और व्यापक हुआ या यों कहा जाए कि उनके गृहस्थरूपी तपोवन ने अपना और अधिक विस्तार किया। दायरा बढ़ा, पर दायित्व वही निभाया जाना था, अपनी संतानों को शिक्षा व संस्कार देने का। अपने बच्चों को गढ़-सँभालकर, उन्हें निखारकर सुसंस्कृत बनाना ही तो उनका मकसद था। वे अनूठे, उनकी गृहस्थी अनोखी थी और आज भी लाखों-करोड़ों को संस्कार देने वाले पूज्यवर एवं परमवंदनीया माताजी संपूर्ण गायत्री परिवार के अभिभावक जन-जन के लिए प्रेरणा के केंद्र बन गए। ❐

नवरात्र में गुरुसत्ता को समझने का प्रयास

परमपूज्य गुरुदेव एवं परम वंदनीया माताजी का अवतरण विशिष्ट प्रयोजन हेतु हुआ। ऋषियुग्म ने गृहस्थ धर्म में रहते हुए, सामान्य जीवन जीते हुए अति महान कार्य किए। 1926 में बालक श्रीराम को वसंत पंचमी के ब्राह्ममुहूर्त में उनकी गुरुसत्ता ने अखंडदीप के सान्निध्य में गायत्री के 24-24 लाख के 24 महापुरश्चरण करने के निर्देश दिए। उन्होंने अपने गुरु को पूर्ण रूप से समर्पित होकर गायत्री और यज्ञ का प्रचार-प्रसार किया।

'यद्यपि गुरुदेव को यह मार्गदर्शन आँवलखेड़ा (आगरा) में मिला, इसका प्रचार-प्रसार मथुरा से ही संभव हुआ। 1940 से 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका तथा 'मैं क्या हूँ' पुस्तक से शुरू हुआ यह अभियान उनके तप तथा दैनिक लेखन से अखण्ड ज्योति परिवार, गायत्री तपोभूमि (1953) मथुरा की स्थापना, गायत्री परिवार, नरमेध यज्ञ (1956), प्रथम सहस्र कुंडीय यज्ञ (1958), जमशेदपुर, बहराइच, पोरबंदर, भीलवाड़ा, महासमुंद पाँच स्थानों पर सहस्रकुंडीय यज्ञों की शृंखला संपन्न करने के बाद तथा पूरे देश में छोटे-बड़े यज्ञों के साथ-साथ युग निर्माण सम्मेलन करते हुए वे 1971 में शांतिकुंज के लिए विदा हुए।

मथुरा तथा हरिद्वार में हर माह नौ-नौ दिन के तथा दोनों नवरात्रों में साधना शिविर लगातार लग रहे हैं। इनमें 24 हजार गायत्री महामंत्र का लघु अनुष्ठान व्यक्तिगत तपश्चर्या से जोड़ा जाता है। नित्य यज्ञ तथा गुरुदेव-माताजी के जीवन तथा मिशन के विस्तार के विषयों पर प्रवचनों द्वारा साधकों को आत्मनिर्माण की प्रेरणा दी जाती है। इसके अतिरिक्त दोनों नवरात्रों में भी शिविर लगते हैं।

नवरात्रों के अनुष्ठान अधिकांश साधक अपने घरों, स्थानीय प्रज्ञापीठों, शक्तिपीठों पर करते हैं, जहाँ प्रवचनों की समुचित व्यवस्था नहीं बन पाती। लोग अपने-अपने स्थानों पर मंत्र जप के साथ-साथ यदि इस लेख में दिए गए सूत्रों पर चिंतन-मनन करते हुए आपस में चर्चाएँ करें, स्वाध्याय करें तो वे गुरुसत्ता के जीवन-सूत्रों को जान और समझ पाएँगे और गुरुसत्ता से निकटता का आभास होने लगेगा।

चिंतन-मनन के सूत्र—

(1.) 15वर्षीय बालक श्रीराम को ही इस साधना के लिए क्यों चुना गया?

उत्तर—पात्रता, पूर्व संस्कार, उन पर पूर्ण विश्वास कि बालक गुरु पर विश्वास करेगा।

(2.) गुरुसत्ता का निर्देश देकर अंतर्धान होना, श्रीराम का उसी क्षण जप में लगना। उन्होंने घर वालों से परामर्श क्यों नहीं किया? दीपक कैसे अखंड रखा जाए? अस्वाद भोजन की व्यवस्था, गाय को जौ खिलाना, गोबर से

निकालना, गोमूत्र में धोना, सुखाना, पीसना, रोटी बनाना, अस्वाद छछ की व्यवस्था आदि।

उत्तर—जो गुरुसत्ता 15वर्षीय बालक का चयन एक महान कार्य के लिए कर चुकी है, उसके विश्वास पर श्रद्धा-विश्वास रखना मुख्य है। दीपक, भोजन अति गौण विषय हैं।

(3.) महापुरश्चरणों में लगते हुए स्वतंत्रता संग्राम सैनिक की भूमिका में प्रवेश क्यों?

उत्तर—समय को पहचानने की कला, आपद्धर्म को महत्त्व देना, महापुरश्चरण में 24 के स्थान पर कुछ और वर्ष लग जाएँ तो कोई हर्ज नहीं, पर स्वतंत्रता संग्राम को नहीं टाला जा सकता।

(4.) गायत्री तपोभूमि की भूमि क्रय करने में ही सारी धनराशि समाप्त हो गई थी, कुछ भी नहीं बचा था। कई दिनों के बाद परम वंदनीया माताजी ने गुरुदेव से कहा—"पूर्व में आप गायत्री तपोभूमि के संबंध में लगभग रोज ही चर्चा किया करते थे, अपनी योजनाओं के बारे में बताया करते थे, पर अब जबकि कुछ हफ्ते पहले रजिस्ट्री हो गई, उस संबंध में आप क्यों मौन हैं? गुरुदेव ने मौन तोड़ा—"क्या करूँ, विवशता है, जेब खाली है। जो कुछ पास था, सारा-का-सारा खरच हो गया। कुछ है ही नहीं तो बात क्या करूँ।" माताजी ने तुरंत अपने सारे गहने गुरुदेव को समर्पित कर दिए।

प्रश्न—यदि पैसा नहीं था तो इतनी बड़ी योजना हाथ में क्यों ली है?

उत्तर—भगवान के काम में अपनी सारी संपदा झोंक दो। काम भगवान का है, व्यवस्था भी वही बनाएगा। जब माताजी ने भी अपने को खाली कर दिया तो गुरुसत्ता ने पत्रिका पाठकों को ऐसी प्रेरणा दी कि अधिक राशि के अधिक मनीआर्डर आने लगे और तपोभूमि बन गई। स्मरण रहे—पूज्यवर ने बिरला जी की आर्थिक पेशकश पहले ही ठुकरा दी थी।

5. गायत्री जयंती, 1953 को तपोभूमि में माता की प्राण-प्रतिष्ठा होनी थी। 24-24 लाख गायत्री महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति भी होनी थी। यह उनके जीवन का प्रथम सार्वजनिक कार्यक्रम था। कुछ विशिष्ट अतिथियों को भी आना था। गायत्री परिवार का संगठन नहीं था। मात्र पत्रिका के पाठक थे। ऐसी परिस्थिति में उनने ठीक 24 दिन पूर्व निराहार रहकर जल उपवास क्यों किया? शरीर पहले ही कृशकाय था, वैशाख-ज्येष्ठ के ग्रीष्मकाल में मात्र गंगाजल पर रहने से भौतिक क्रियाकलाप प्रभावित तो होते ही हैं, फिर उस समय इतना कठोर अनुष्ठान क्यों शुरू किया?

उत्तर—प्राण-प्रतिष्ठा से पूर्व प्राण का प्रखर होना अधिक आवश्यक था। अन्य कार्य दूसरे लोग भी सँभाल सकते हैं। यदि गुरु के प्रति समर्पण हो तो सारी समस्याएँ हल हो जाती हैं।

प्रयास किया जाना चाहिए कि साधक आगामी नवरात्रों में गोताखोर की भाँति गंभीरता-पूर्वक चिंतन करते हुए ऋषियुग्म की जीवनयात्रा के प्रसंगों में डूबने का अभ्यास करें और अनेक हीरे-मोती ढूँढ़कर आनंद लें तथा मिशन के कार्यों को पूरा करने में प्राणपण से लग जाएँ। ❐

ज्ञातव्य

परिजन ध्यान दें

★ शिविरों में भाग लेने के लिए एक दिन पूर्व पधारें।
★ कृपया बिना स्वीकृति के न आएँ।
★ आवास की व्यवस्था ऊपर की मंजिलों में रहेगी।
★ अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड, मोबाइल नंबर, पद-व्यवसाय, आधार कार्ड नंबर, जन्म-तिथि आदि का पूरा विवरण दें।
★ किसी भी शिविर में अतिवृद्ध, बीमार, अनुशासन पालन करने में असमर्थ परिजन न आएँ।

आगामी नौ दिवसीय अनुष्ठान साधना सत्र

गायत्री तपोभूमि में चल रहे नौ दिवसीय अनुष्ठान साधना सत्र के आगामी शिविर निम्नलिखित हैं–

अक्टूबर, 2025	नवंबर, 2025	दिसंबर, 2025	जनवरी, 2026
5 से 13, 25 अक्टू.-2 नव.	22 से 30	01 से 09	23 से 31

वही परिजन आवेदन करें, जो प्रतिदिन 30 माला गायत्री मंत्र जप कर सकें।

नव प्रकाशित प्रज्ञा नाटक

' कोटि-कोटि संतानों की माताजी '

वंदनीया माताजी की जीवन-यात्रा के हृदय को छूने वाले अविस्मरणीय संस्मरणों को प्रस्तुत नाटकमाला में नाट्यरूपांतर के माध्यम से सजीव रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

पृष्ठ : 80, मूल्य 40/-

पुस्तक की 5 प्रतियाँ मँगाने पर डाक व्यय फ्री। साहित्य केंद्रों एवं पुस्तक मेलों को नियमानुसार छूट।

पत्रिका प्रचारक सम्मेलन

परमपूज्य गुरुदेव ने अपने क्रांतिकारी विचारों को जन-जन तक पहुँचाने के लिए नित्य लेखन किया और पत्रिकाओं तथा 3200 पुस्तकों को सुलभ कराया। पत्रिकाओं का प्रसार उनकी विचारधारा के प्रसार के लिए आवश्यक है। पत्रिकाओं के प्रचार-प्रसार की समग्र योजना को समझने तथा सफल क्रियान्वयन हेतु यह शिविर निम्नलिखित तिथियों में गायत्री तपोभूमि में आयोजित है, जिसमें आप सभी परिजन अवश्य भागीदार बनें।

दि. 07 से 09 नवंबर, 2025 — चंडीगढ़, दिल्ली, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, पंजाब, राजस्थान, उत्तराखंड

युवा शिविर

12 से 14 नवंबर, 2025

राष्ट्र एवं समाज निर्माण में युवा शक्ति का विशेष योगदान होता है। युवा पीढ़ी के समुचित मार्गदर्शन हेतु यह शिविर यहाँ आयोजित किया जा रहा है। इच्छुक परिजन इसमें भाग लेकर अवश्य लाभ उठाएँ।

कन्या कौशल शिविर

17 से 19 नवंबर, 2025

इक्कीसवीं सदी नारी सदी है मातृशक्ति के विविधरूपों माँ, बहन, पत्नी, पुत्री आदि से अगणित अनुदान मानव को प्राप्त होते हैं उनकी कुशलता दक्षता, समर्थता के लिए दिव्य मार्गदर्शन हेतु यह शिविर आयोजित किया गया है। बहनों से अनुरोध है कि वे इस शिविर में अवश्य भागीदार बनें।

40 दिवसीय अनुष्ठान साधना शिविर

12 दिसंबर, 2025 से 20 जनवरी, 2026

40 दिवसीय साधना शिविर प्रतिवर्ष की तरह इस वर्ष भी यहाँ उपरोक्त तिथियों में आयोजित हैं भागीदारी हेतु आत्मीय परिजन समयपूर्व स्वीकृति प्राप्त कर इसका लाभ उठाएँ।

प्राकृतिक चिकित्सा के शरीर-शोधन शिविर

यहाँ शरीर-शोधन शिविर रोग-प्रतिरोधक शक्ति बढ़ाने के लिए तथा सामान्य शारीरिक एवं मानसिक कष्ट-कठिनाइयाँ दूर करने के लिए प्रतिमाह निरंतर आयोजित किए जा रहे हैं, इनसे सैकड़ों परिजनों को आशातीत लाभ हुआ है। आप भी इन शिविरों का लाभ उठा सकते हैं एवं अपने संपर्क क्षेत्र के परिजनों को इसके लिए प्रेरित कर सकते हैं। शरीर शोधन शिविर की आगामी तिथियाँ निम्नलिखित हैं—

अक्टूबर, 2025	नवंबर, 2025	दिसंबर, 2025	जनवरी, 2026
दि. 1 से 7	*दि. 1 से 7*	*दि. 1 से 7*	*दि. 1 से 7*
द. 11 से 17	*दि. 11 से 17*	*दि. 11 से 17*	*दि. 11 से 17*
दि. 24 से 30	*दि. 21 से 27*	*दि. 21 से 27*	*दि. 21 से 27*

स्वास्थ्यार्थी को जो शुल्क जमा करना है निम्नानुसार है—

1. सामान्य कमरा—[दो व्यक्तियों का शुल्क-14,000/-]
2. प्राइवेट सामान्य कमरा—[एक व्यक्ति का शुल्क-10,000/-]
3. प्राइवेट वातानुकूलित कमरा—[एक व्यक्ति का शुल्क-14,000/-]
4. वातानुकूलित कमरा—[दो व्यक्तियों का शुल्क-20,000/-]

समस्त पत्र व्यवहार, फोन, ई-मेल के लिए संपर्क सूत्र

पता—युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि, मथुरा-281003

फोन नं० : (0565) 2530115, 2530128, 2530399, मो.— 09927086287, 09927086289

Email id : yugnirman@yugnirmanyojna.org

Website : www.yugnirmanyojna.org

Youtube : youtube.com/@yugnirmanyojnaofficial

Facebook : Yug Nirman Yojna Mathura

अहंकार है, पतन का कारण

अहंकार एक विषधर है, जिसमें व्यक्ति स्वयं को विशेष महत्त्वपूर्ण समझने लगता है। अहंकारी व्यक्ति स्वयं तो पतन के मार्ग पर अग्रसर होता ही है; साथ ही उससे संबंधित समाज भी दुष्प्रभावित हुए बिना नहीं रहता।

अहंकार का जागरण तब होता है, जब व्यक्ति धन-संपत्ति, सौंदर्य, शरीरबल, जाति-वंश, शक्ति-सामर्थ्य, बुद्धि, कला, पद, तपस्या, सिद्धि आदि के आधार पर स्वयं को दूसरों की तुलना में श्रेष्ठ मानने लगता है। सफलता प्राप्त करने पर वह यह समझने लगता है कि मैं ही सर्वश्रेष्ठ हूँ, मेरा जैसा अन्य कोई हो ही नहीं सकता, जो मैंने किया, वह अन्य कोई कर ही नहीं सकता। अहंकाररूपी यह विष-बेल उसके विचारों व भावों का पोषण पाकर फलने-फूलने लगती है।

अहंकारी व्यक्ति चाहता है कि अन्य लोग उसकी प्रशंसा करें, उसकी पुष्टि करें और उसको सम्मान प्रदान करें। वह अन्य लोगों पर आधिपत्य जमाना चाहता है, उन्हें अपनी इच्छानुसार चलाना चाहता है। वह चाहता है कि अन्य व्यक्ति उसकी सभी बातों का अनुमोदन करें। वह अपनी आलोचना सुनना पसंद नहीं करता। जब तक उसके अहंकार की तुष्टि होती रहती है, तब तक वह सुखी अनुभव करता है। अहंकार की तुष्टि न होने पर वह अत्यंत दु:खी हो जाता है तथा जिस व्यक्ति के कारण ऐसा न हो पाया हो, उससे प्रतिशोध लेने को तत्पर हो जाता है।

अहंकार का जागरण होते ही सारे सद्गुण उससे उसी प्रकार दूर होते चले जाते हैं, जिस प्रकार किसी जलस्रोत के सूख जाने पर उसके समीप रहने वाले पशु-पक्षी। अहंकार को मद भी कहा गया है। मद अर्थात नशा। अहंकार का नशा हो जाने पर व्यक्ति मद्यपों की भाँति मतवाला हो जाता है। उसका विवेक नष्ट होने लगता है, उसमें उचित-अनुचित का निर्णय करने का ज्ञान नहीं रहता। उसकी आत्मनिरीक्षण, स्वदोष-दर्शन की शक्ति व क्षमता समाप्त हो जाती है, फलत: उसमें अन्य अनेक दोष-दुर्गुण पनपने लगते हैं। उसको किसी की प्रगति अच्छी नहीं लगती और किसी को प्रगति करता हुआ देखकर वह उससे ईर्ष्या-द्वेष करने लगता है। उसको अपने सिवाय कोई श्रेष्ठ नहीं लगता व स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए परनिंदा में रस लेने लगता है।

अहंकारी व्यक्ति के विकास का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। पुराणों में उल्लेख प्राप्त होता है कि देवताओं को कई बार असुरों से पराजित होना पड़ा; क्योंकि प्रत्येक देवता को अपनी शक्ति का अहंकार रहा। अहंकारी व्यक्ति की उन्नति का मार्ग तो अवरुद्ध होता ही है इतना ही नहीं, वरन उसका पतन होना आरंभ हो जाता है। यदि समय रहते वह व्यक्ति सजग,

सचेत न हो, न सँभले तो अंततः अहंकार उसके विनाश का कारण बन जाता है। हिरण्यकशिपु, रावण, कंस, दुर्योधन आदि के उदाहरण सर्वविदित हैं। जब इनका अहंकार पराकाष्ठा पर पहुँच गया तो काल ने इनको समाप्त कर दिया। इसीलिए विज्ञजनों ने अहंकार से बचने के लिए कहा है। तुलसीदास जी ने अहंकार को सब दुःखों का कारण बताते हुए इसके नष्ट होने को भगवान की सबसे बड़ी कृपा माना है—

संसृत मूल सूलप्रद नाना।
सकल सोक दायक अभिमाना॥
ताते करहिं कृपानिधि दूरी।
सेवक पर ममता अति भूरी॥

अहंकार की सत्ता जल के बुलबुले की तरह होती है, जिसको नष्ट होने में समय नहीं लगता। इस संदर्भ में एक प्रसंग उल्लेखनीय है। सम्राट भरत ने जब संपूर्ण भूमंडल को जीत लिया तो उनने देवराज इंद्र के पास जाकर कहा—"अब मुझे अपनी कीर्ति को अक्षय-अमर रखने के लिए वृषभाचल पर अपना नाम अंकित करना चाहिए।" इंद्र ने इसमें सहमति व्यक्त की। सम्राट भरत वृषभाचल पर पहुँचने पर यह देखकर अचंभित रह गए कि पूरा पर्वत चक्रवर्ती सम्राटों के नामों से भरा है, उसमें इतना स्थान भी खाली नहीं है कि एक नाम और लिखा जा सके। बहुत खिन्न मन से वे इंद्र के पास लौट आए और बोले—"उसमें तो मेरा नाम लिखने योग्य स्थान ही नहीं है, अब मैं अपना कैसे लिखूँ?" इंद्र बोले—"तुम किसी का नाम मिटाकर अपना नाम लिख दो। सहस्त्रों-सहस्त्रों वर्षों से यही परंपरा चली आ रही है।" इस पर भरत ने कहा—"तो फिर भविष्य में मेरा नाम मिटाकर कोई अन्य व्यक्ति अपना नाम लिख सकता है?" इंद्र ने कहा—"हाँ, ऐसा हो सकता है।" तब भरत बोले—"तो फिर ऐसी उपलब्धि पर अहंकार करने से क्या लाभ, जिसका कोई स्थायी अस्तित्व न हो।" सम्राट भरत का अहं विगलित हो गया। वे अनुभव करने लगे कि कितना विराट और अनादि अनंतकाल से चला आ रहा है—यह जगत्। इस विराट जगत् में अपना अस्तित्व, अपना स्थान है ही कितना? यह सोचना कितना गलत है कि जो मैंने किया, वह कोई कर ही नहीं सकता। यह सोचकर भरत इंद्रलोक से वापस लौट आए।

यह विचारणीय तथ्य है कि जब सृष्टि का सृजेता शाश्वत ईश्वर स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करने का कभी कोई प्रयास नहीं करता, तब हम मरणधर्मा होते हुए स्वयं को श्रेष्ठ मानने व सिद्ध करने का उपाय किस आधार पर कर सकते हैं।

अहंकार व्यक्ति को पतन के मार्ग पर ले जाता है, इसलिए मनुष्य को जो कुछ भी विशेषता प्राप्त हो उसके आधार पर स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करने के बजाय इसका सदुपयोग स्वयं के विकास में एवं दूसरों के कल्याण के लिए करना चाहिए। उसे यह सदैव स्मरण रखना चाहिए कि ईश्वर के सिवाय अन्य कुछ भी न तो श्रेष्ठ है और न स्थायी। जिन उपलब्धियों के कारण आज वह गर्वोन्मत्त हो रहा है, उन्हें नष्ट होने में क्षणमात्र भी नहीं लगेगा। ऐसा सोचकर व्यक्ति को सदैव विनम्र व शालीन बने रहना चाहिए। अपनी उपलिब्धयों व सफलताओं को ईश्वर की कृपा मानते हुए उसका कृतज्ञताज्ञापन करते रहना चाहिए। निरहंकारिता ही उन्नति-प्रगति, सुख-संतोष व प्रसन्नता का मार्ग प्रशस्त करती है। ❐

कुरीति निवारण

विवाहों में हो आदर्शवादिता

संसार भर में शादियाँ सादगी के साथ घरेलू उत्सव की तरह थोड़े-से इष्ट-मित्रों और सगे-संबंधियों की उपस्थिति में ही हो जाया करती हैं। भारत में तो यह उत्सव ऐसा विघातक, उपहासास्पद और खरचीला है कि सभ्य समाज का हर विचारशील सदस्य उसकी निंदा किए बिना न रहेगा।

एक तरफ लड़के वाले लड़की वालों से दहेज माँगकर लुटेरों जैसा अनैतिक कृत्य करते हैं। ऐसा लगता है जैसे बड़ी संपत्ति कमाई होगी और घर भरकर संपदा अर्जित कर ली होगी। दूसरी तरफ बेटी वाले को बारात के स्वागत-सत्कार में उतना खरच करना पड़ता है मानो स्वर्गलोक से उतरकर कोई देवता बड़ी मंडली बनाकर उनके यहाँ पधारे हों अथवा किन्हीं बहुत बड़े अफसरों, मिनिस्टरों का स्वागत-सत्कार करने में अपनी हैसियत से अनेक गुना अधिक लुटाना पड़ रहा हो।

जो सामान वर पक्ष को दिया जाता है, उसमें नकदी का अंश तो थोड़ा ही होता है। अधिकांश पैसा जेवर, कपड़े, फर्नीचर, उपहार आदि के रूप में देना पड़ता है। वह सभी देते-लेते समय तो आकर्षक प्रतीत होता है। लेकिन वह कबाड़ निरर्थक घर में जगह ही घेरता है; क्योंकि आवश्यक उपयोग की वस्तुएँ तो विवाह से पूर्व भी लड़के के पास रहती हैं, उन्हें फेंका थोड़े ही जाता है, फिर नया कबाड़ जो घर में भर गया, वह कुछ दिन में ऐसे ही टूट-फूटकर बरबाद हो जाता है।

बाजे-गाजे, आतिशबाजी, घुड़सवारी, बारात का मार्ग-व्यय आदि में खपने वाली राशि भी कम नहीं होती है, जो देखते-देखते समाप्त हो जाती है। दूसरे दिन के लिए तो उसकी चर्चा तक शेष नहीं बचती। ऐसी दशा में लड़के वाले को जो खरच करना पड़ता है, वह उससे कहीं अधिक होता है, जो कि लड़की वाले से नकदी के रूप में दहेज से मिलता है।

दहेज लेने के बदले लड़के वाले को वधू के लिए कीमती जेवर और कपड़े चढ़ाने पड़ते हैं। सोना कितना महँगा है। थोड़े-से जेवर बनवाने पर भी वे इतनी रकम खो देते हैं, जितने में एक छोटा-मोटा उद्योग लग सकता है, फिर उन जेवरों की जिंदगी भर रखवाली करनी पड़ती है। परिवार में जिसके पास कुछ कम है, उनमें ईर्ष्या बन पड़ती है। चोर-डाकुओं का निरंतर भय बना रहता है। इन दिनों घरों में पूँजी के रूप में जेवर ही देखे जाते हैं। चोर-डाकू उनका सुराग लेते रहते हैं और जिन घरों में कुछ मिलने की आशा रहती है, उसी पर चढ़ दौड़ते हैं।

स्मरण रहे कि खरचीली शादियाँ यदि बंद करनी पड़ीं, तो दहेज लेना ही नहीं, जेवर चढ़ाना भी बंद करना होगा। उपहारों और प्रदर्शनों को पूरी तरह हटाना होगा।

आर्थिक समृद्धि की बात इन दिनों हर क्षेत्र में सोची जा रही है। इसके लिए मात्र आजीविका बढ़ाना ही एक उपाय नहीं है, उसी के समानांतर दूसरा उपाय यह भी है कि अनावश्यक खरचों में पूरी तरह कटौती की जाए। ऐसी मदों में विवाहों को नितांत सादगी से संपन्न करने के रिवाज को प्रश्रय देना चाहिए और खरचीली शादियाँ न करने के लिए अपने समूचे संपर्क-क्षेत्र में प्रचार करने से लेकर दबाव देने तक का उपक्रम अपनाते हुए समझदारी का वातावरण बनाना चाहिए।

शादियों से जुड़ी हुई एक दूसरी अवांछनीयता जेवरों की है। उनका उपयोग दैनिक रूप से तो कहीं-कोई बिरले ही करते हैं, पर विवाह-शादियों में सम्मिलित होने वाली महिलाएँ जेवरों से सज-धजकर जाती हैं; इसके अनेक दुष्परिणाम हो सकते हैं। गरीब महिलाओं का मन ललचाता है और वे भी अपने घरवालों पर वैसा ही प्रबंध करने के लिए दबाव डालती हैं, न मिल पाने पर हीनता का अनुभव करती हैं। अकारण मानसिक विक्षोभ उत्पन्न होता है।

जेवर घिसते और टूटते-फूटते रहते हैं। दो-चार बार मरम्मत के लिए ले जाने पर मजूरी और मिलावट के उपक्रम में लगी पूँजी का अधिकांश भाग ऐसे ही बरबाद हो जाता है। अर्थविज्ञान का सर्वमान्य नियम है कि पूँजी को किन्हीं उत्पादक कामों में घुमाते रहना चाहिए। उसे बटोरकर अवरुद्ध नहीं करना चाहिए। जेवरों में पूँजी जाम हो जाती है और उसका ब्याज या अन्य रूप से जो प्रतिफल मिलना चाहिए, उससे वंचित रहना पड़ता है। जेवरों की परिपाटी में यह हानि होना प्रत्यक्ष है।

कन्या के अभिभावक, स्वजन, संबंधी विवाह के अवसर पर लड़की को कुछ भेंट-उपहार देना चाहते हैं। इसमें कोई बुराई नहीं है, पर अच्छा यही है कि जो कुछ देना हो, वह नकदी के रूप में दिया जाए और उस सबको एकत्रित करके पंचवर्षीय बचतपत्र खरीदने में लगा दिया जाए। इस प्रकार लगाया हुआ धन कुछ वर्ष में दूना हो जाता है। इस प्रकार जमा की हुई राशि को बैंक उद्योग में लगाता है और उससे अनेक बेरोजगारों की रोजी-रोटी का सुयोग बनता है। जमा करने वाला तो घर बैठे निरंतर अपना मूल धन बढ़ाता ही रहता है।

बेटी वाले का दहेज और बेटे वाले का जेवर यदि नकदी के रूप में जमा किया जाए और उस संयुक्त राशि को नववधू के नाम स्त्रीधन के रूप में जमा कर दिया जाए, तो उसके सहारे भविष्य की निश्चिंतता भी रह सकती है और वह जमा पूँजी आड़े वक्त में कभी भी काम आ सकती है। धूम-धाम में बरबाद होने वाली राशि बच सके तो इससे संबंधित दोनों ही पक्षों में आर्थिक बरबादी होने से बच जाएगी। कहना न होगा कि हर भारतीय परिवार में शिक्षा, स्वास्थ्य और सभ्यता के नए आधार खड़े करने के लिए बहुत कुछ किए जाने की आवश्यकता है।

विवाह-शादियों के साथ जुड़े हुए उपहार या आदान-प्रदान इस मंतव्य को साथ लिए होते हैं कि वर-वधू को अधिक आमोद-प्रमोद का अवसर मिले और कड़ी मेहनत करने से बचे रहने का अवसर मिले। देखा जाता है कि इसी आधार पर लड़कों की ढूँढ़-तलाश होती है। लड़कियों का मानस भी आरामतलबी और विलासिता में रँगे रहने की इच्छा-आकांक्षा का बन जाता है। होना यह चाहिए कि विवाह के उपरांत वर-वधू मिल-जुलकर अधिक परिश्रम करने में उत्साह प्रदर्शित करें और सर्वतोमुखी प्रगति का पथ प्रशस्त करें। सादा जीवन—उच्च विचार का सिद्धांत तभी निभता है, जब कठोर श्रम करते हुए अभ्युदय के वास्तविक आधार खड़े किए जाएँ। विवाह के अवसर पर परामर्श-आशीर्वाद इसी स्तर के दिए जाने चाहिए कि परस्पर स्नेह-सूत्र में बँधा हुआ युग्म संयम, सहकारिता और उत्कर्ष के लिए एकदूसरे के कंधे-से-कंधा मिलाकर काम करे और अधिक मनोयोगपूर्वक अधिक परिश्रम करने में इस मिलन की सफलता-सार्थकता समझे।

विवाह वर-वधू के बीच अविच्छिन्न सहयोग, सद्भाव के संस्थापन संवर्द्धन की प्रक्रिया तो है ही, साथ ही दो परिवारों के बीच भावभरी सद्भावना स्थापित करने का भी आधार है, पर यह सब बन तभी पड़ता है, जब स्वार्थसिद्धि का कोई प्रसंग बाधक बनकर खड़ा न हो। शादियों में बरती जाने वाली खरचीली धूम-धाम और छीना-झपटी उस मूल उद्देश्य को ही समाप्त करती है, जिसके लिए कि विवाह की आवश्यकता समझी और उसकी सफलता की आशा की जाती है। ❐

एक निर्धन शिष्य की भक्ति-भावना से प्रसन्न होकर किसी सिद्धपुरुष ने उसे पारसमणि देने का आश्वासन दिया और प्राप्त करने का एकांत समय और स्थान बता दिया।

शिष्य बड़ी प्रसन्नता और उत्साह के साथ नियत समय पर पहुँचा। साधु ने उसे एक स्थान खोदने और वहाँ से एक छोटी डिब्बी खोद निकालने के लिए कहा। शिष्य ने वैसा ही किया। साधु ने बताया कि इसी में वह पारसमणि है।

शिष्य को विश्वास न हुआ। उसने अनमने होकर पूछा—यदि इस लोहे की डिब्बी में पारस रहा होता तो कम-से-कम यह तो सोने की ही हो गई होती।

संत ने कुछ उत्तर तो न दिया, पर डिब्बी को खोलकर उसे दिखाया। पारस के ऊपर मोटे कपड़े का खोल लिपटा हुआ था, जिससे लोहे और पारस को परस्पर मिलने का अवसर ही नहीं मिलता था। जब खोल हटाकर दूसरे लोहे को छुआया गया तो वह डिब्बी भी सोने की हो गई और दूसरा टुकड़ा भी।

पारस पाकर शिष्य निहाल हो गया। साथ ही उसने यह निष्कर्ष निकाला कि जब तक जीवन पर मलिनताओं का खोल चढ़ा रहता है, तब तक वह भगवान को, सद्गति को, प्राप्त कर सकने में समर्थ नहीं हो पाता।

सफलता के उच्च शिखर पर पहुँचने के सूत्र

आज की आपा-धापी भरी जीवनशैली का सर्वाधिक वांछित लक्ष्य है—सफलता, जो अंततः यह निश्चित करती है कि किसने क्या खोया और क्या पाया? एक सफल व्यक्ति के पास ही सफलता के बंद दरवाजों की चाबी होती है। वह अपने लिए ही नहीं, दूसरों के लिए भी कई नए अवसरों का सृजन कर सकता है।

सफलता के उच्च शिखर पर पहुँच चुके ज्यादातर लोग सफलता को कठिन परिश्रम, मनोहारी व्यक्तित्व, अपने प्रयास के प्रति पूरी ईमानदारी, प्रत्येक उतार-चढ़ाव को बरदाश्त करने की शक्ति की परिणति के रूप में परिभाषित करते हैं। कुछ सफल व्यक्ति इसे ईश्वर की कृपा या फिर किस्मत की अनुकूलता के रूप में स्वीकार करते हैं। फिर भी कुछ बातें ऐसी हैं, जिन पर सभी सफल व्यक्ति एकमत हैं। वे मानते हैं कि कुछ सूत्रों को अपनाकर कोई भी व्यक्ति सफलता के शिखर तक पहुँच सकता है।

पहला सूत्र है—लक्ष्य का निर्धारण। सफलता के आकांक्षी ज्यादातर लोग महत्त्वाकांक्षी होते हैं, पर वे यह नहीं समझ पाते कि अपने लक्ष्य को कैसे सुनिश्चित किया जाए? वास्तव में लक्ष्य निर्धारित करने के लिए किसी भी व्यक्ति को अपनी प्रतिभा एवं अपनी कमजोरियों के बारे में सजग होकर सोचना पड़ता है। लक्ष्य-निर्धारण के साथ ही लक्ष्य तक पहुँचने के सर्वोत्तम व सहज मार्ग की परिकल्पना भी तैयार हो जाती है। अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए जो भी मार्ग अपनाया जाए उसे समयानुकूल, विवेकानुसार परिवर्तित करते रहना चाहिए।

दूसरा सूत्र है—संसाधनों का सदुपयोग। एक मानव के रूप में हम जन्म से ही कुछ-न-कुछ संसाधनों को प्राप्त करते रहते हैं। जीवन को पल्लवित-पुष्पित करने के लिए आवश्यक सारे संसाधन इस सृष्टि के कण-कण में बिखरे पड़े हैं। भोजन, आवास, स्वास्थ्य और शिक्षा की बुनियादी सुविधाएँ तो हमें उपलब्ध हैं ही; साथ ही अभिभावकों एवं शिक्षकों द्वारा प्रदत्त अंतर्दृष्टि भी एक अमूल्य संसाधन के रूप में उपलब्ध है। विभिन्न ज्ञान-विज्ञान का खजाना हमें पीढ़ी-दर-पीढ़ी विरासत के रूप में मिलता ही है। सफल होने के लिए व्यक्ति को चाहिए कि वह इन संसाधनों का अधिकतम प्रयोग बहुत सोच-समझकर, सूझ-बूझ एवं संयम के साथ करे।

सफलता का तीसरा सूत्र है—सीखने की चाह। अहंकारी व्यक्ति को अपना लक्ष्य हासिल करने में अनेक बाधाओं का सामना

करना पड़ता है; क्योंकि दुनिया का सर्वोत्तम शिक्षक भी अहंकारी व्यक्ति में ज्ञान की ज्योति नहीं जला सकता। सफलता के लिए यह अनिवार्य है कि नए विचारों को सीखने एवं ग्रहण करने की प्रवृत्ति विकसित की जाए। इस प्रवृत्ति को अपनाकर ही किसी अन्य की उपलब्धियों से ईर्ष्या-द्वेष करने के बजाय उन्हें सराहा जा सकता है, आत्मसात् किया जा सकता है।

चौथा सूत्र है—संवाद कौशल। अपनी बात को समुचित एवं सशक्त तरीके से प्रस्तुत करना भी सफलता का अनिवार्य अंग है। संवाद स्थापित करने का यह हुनर घर और बाहर दोनों ही जगहों पर उपयोगी है। इसके लिए तीन आवश्यक तत्त्वों का ध्यान रखना आवश्यक है—संक्षिप्तता, सुस्पष्टता और निरंतरता।

सफलता के लिए पाँचवाँ सूत्र है—नेतृत्व करने की योग्यता। अपने भीतर अपनी प्रतिभा एवं क्षमता को पहचानकर आगे बढ़ने वाला व्यक्ति किसी भी क्षेत्र में नेतृत्व कर सकता है। आत्मविश्वास, विचारों की स्पष्टता एवं दृढ़ निश्चय से संपन्न व्यक्ति ही सफल नेतृत्व कर सकता है। इस क्रम में एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अपनी असफलता को भी साहस के साथ स्वीकार किया जाए, क्योंकि असफलता हमें एक नया अवसर प्रदान करती है कि हम अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए एक नए जोश के साथ प्रयत्न करें।

छठवाँ सूत्र है—प्रशासनिक कौशल। किसी निर्दिष्ट कार्य को समय पर पूरा करना। एक नियत समय के अंदर कार्य को पूर्ण करने की प्रवृत्ति, किसी अन्य व्यक्ति की कार्यक्षमता एवं गुणवत्ता को कम समय में ही जान लेना—ये सभी ऐसे प्रशासनिक गुण हैं, जो व्यक्ति की सफलता का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

सातवाँ सूत्र—क्षमा, करुणा एवं सहयोग की भावना। सफलता की राह में अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ता है। कई बार हम किसी अन्य की गलती के कारण विफल हो जाते हैं, तब ऐसे में क्रोध करने के बजाय उसे क्षमा कर देना चाहिए। शांत एवं प्रसन्न मन से किया गया कार्य ही सफलता का मार्ग प्रशस्त करता है। इन गुणों को विकसित करने में जप, ध्यान आदि सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

आठवाँ सूत्र है—वित्तीय संसाधन का सुनियोजन। वित्तीय संसाधन सफलता प्राप्त करने का एक आवश्यक एवं अहम पहलू है. सफलता के आकांक्षी व्यक्ति को चाहिए कि वह निकट भविष्य के लिए कार्य-योजना और नीतियाँ बनाए। अपने धन का निवेश व्यावसायिक एवं व्यक्तिगत मामलों में बहुत सोच-समझकर करे। अधिकांश सफल व्यक्तियों ने दौलतमंद होने के बाद भी अपनी दौलत का दुरुपयोग नहीं किया, अपितु उसे योजनाबद्ध तरीके से समुचित कार्यों के लिए खरच किया।

नौवाँ सूत्र है—सकारात्मक सोच। यह निर्विवाद सत्य है कि सकारात्मक सोचने वाला व्यक्ति ही सफलता के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच पाता है। हालाँकि सकारात्मक सोच का स्वामी

बनना आसान नहीं है, पर थोड़ी-सी मेहनत से इसे जीवन में उतारा जा सकता है। सकारात्मक सोच रखने वाला व्यक्ति कभी भी नकारात्मक नहीं सोचता है। अतः सर्वप्रथम अपने भीतर से हीन भावना का परित्याग कर देना चाहिए। 'अब मैं क्या कर सकता हूँ, कैसे कर सकता हूँ' इन विचारों को हमेशा के लिए अपने मन-मस्तिष्क से निकाल देना चाहिए। इन नकारात्मक विचारों के स्थान पर 'मैं क्या नहीं कर सकता हूँ, सब कुछ संभव है, असंभव कुछ भी नहीं' इन विचारों को अपने चिंतन का अनिवार्य हिस्सा बना लेना चाहिए। सकारात्मक सोच वाला व्यक्ति कभी भी छोटी बात नहीं सोचता है। जब सोच ऊँची होगी, तभी उड़ान ऊँची होगी और ऊँचाइयों पर पहुँचा जा सकेगा।

दसवाँ सूत्र है—आत्मविश्वास। प्रत्येक व्यक्ति में आत्मविश्वास भरा पड़ा है। आवश्यकता सिर्फ उसे जगाने की है। आत्मविश्वास के जगते ही चिंतन भी बदल जाता है और असंभव लगने वाला कार्य भी संभव बन जाता है। आत्मविश्वास के बिना कोई भी सफलता के शिखर तक नहीं पहुँच पाता।

ग्यारहवाँ सूत्र है—सही समय पर सही कार्य। सफलता के लिए व्यक्ति को चाहिए कि वह समय का सही व संतुलित रूप से प्रयोग करना सीखे। समय ईश्वर द्वारा प्रदत्त बहुमूल्य देन है। इसे व्यर्थ बरबाद नहीं करना चाहिए। अपना समय सार्थक कार्यों में ही लगाएँ। जो अपने एवं दूसरों के समय का ध्यान रखते हैं, वे समयबद्ध तरीके से अपने लक्ष्य तक पहुँच ही जाते हैं।

परमात्मा ने प्रत्येक व्यक्ति को प्रगति के समान अवसर प्रदान किए हैं। आवश्यकता सिर्फ उन अवसरों का समुचित रूप से लाभ उठाने की है। उपर्युक्त सूत्रों को अपनाकर कोई भी व्यक्ति शून्य से शिखर तक की यात्रा तय कर सकता है। ❐

एक सनकी था। उसे अपनी परछाईं से भूत का आभास होता और पैरों की चाप सुनकर डरने लगता था। सोचता कोई उसका पीछा करता है। आशंका बढ़ती तो वह तेज कदम उठाता, ताकि पीछा करने वालों से बच सके। बहुत समय तक यही क्रम चलता रहा। इतने पर भी डर घटा नहीं। तेजी से चलने पर विपत्ति भी पीछे दौड़ती प्रतीत होती।

अंत में वह थककर बैठ गया। बैठते ही छाया रुक गई और पदचाप की आवाज ने डराना बंद कर दिया। सनक दूर होते ही, डर दूर हुआ। आशंका मिटी और समाधान हो गया। देर से सही, पर अंत में यह समझ लिया गया कि डर अपनी ही छाया और पदचाप उत्पन्न करती थी।

निरर्थक भय से बचें

मनुष्य की प्रगति में यदि सबसे बड़ी कोई बाधा है तो वह भय है। भय के रूप विविध तथा असंख्य हो सकते हैं। भय एक ऐसा संवेग है, जो हमारे शरीर व मन पर नकारात्मक प्रभाव डालता है। यह हमारे व्यक्तित्व की समस्त संभावनाओं को नष्ट कर देता है, जिसके कारण व्यक्ति इतना निर्बल बन जाता है कि वह साधारण से-साधारण कार्य भी नहीं कर पाता। भय की स्थिति में व्यक्ति उचित-अनुचित में भेद नहीं कर पाता, क्योंकि भय हमारे मन-मस्तिष्क को अवरुद्ध कर देता है और हम सही निर्णय ले पाने में असमर्थ होते हैं।

भय सभी को लगता है। वास्तव में भय हमें चेताने आता है, ताकि हम आने वाली विकट परिस्थितियों का सामना करने के लिए तैयार हो जाएँ, किंतु यह घातक तब होता है, जब व्यक्ति को अकारण ही हर चीज से भय लगने लगे। कुछ लोग डर-डरकर अपना जीवन व्यतीत करते हैं और डर को अपने जीवन का अभिन्न अंग बना लेते हैं। यह मानना भूल है कि डरने से हम प्रगति कर सकते हैं। भय एक ऐसा भाव है, जिसे हमेशा अस्वीकार ही करना चाहिए, क्योंकि भय, भय के विषय को आकर्षित करता है।

भय के कई कारण हो सकते हैं—बाह्य और आंतरिक। बाह्य भय परिस्थितिजन्य होता है, जिसका कारण प्रत्यक्ष होता है, जिससे सभी को स्वाभाविक रूप से भय लगता है, ताकि हम उस परिस्थिति से निपटने के लिए तैयार हो जाएँ। किंतु आंतरिक भय प्रायः काल्पनिक होता है, जो अज्ञान से उत्पन्न होता है। बाहरी भय की अपेक्षा आंतरिक भय अधिक घातक होता है, क्योंकि बाहरी भय के कारण प्रत्यक्ष होते हैं, इसलिए हम सतर्क हो जाते हैं। कई बार बाह्य भय के समाधान हेतु हमें सहायता भी मिल जाती है, किंतु आंतरिक भय अप्रत्यक्ष होता है, काल्पनिक होता है, जो व्यक्ति को अंदर-ही-अंदर खोखला कर देता है।

वास्तव में भय एक प्रकार की मनोव्यथा है, जो अज्ञान से आती है। हमारे जीवन के ऐसे बहुत-से आयाम हैं, जिनसे हम पूर्णतया परिचित नहीं हैं और उनसे हमारा यह अपरिचय ही अनजाने भय को जन्म देता है। भय के अन्य कारणों में से एक कारण है—स्वयं को अनावश्यक ही असुरक्षित अनुभव करना। कुछ लोग ऐसे होते हैं जिन्हें अपनी सुरक्षा की चिंता बहुत अधिक रहती है और यह चिंता इनके मन में भय को जन्म देती है। वे व्यर्थ ही अनेकों तरह की चिंताएँ पाले रहते हैं और अनेकों तरह की नकारात्मक कल्पनाएँ करते रहते हैं।

इन व्यर्थ चिंताओं का मुख्य कारण है—उनका स्वयं पर अविश्वास। विश्वास के अभाव में ही चिंता उत्पन्न होती है और चिंता से उत्पन्न होता है—डर। ऐसे लोगों को अपने आप पर विश्वास नहीं होता। सबसे मुख्य बात तो यह है कि ऐसे लोगों को भगवान पर भी सहज विश्वास नहीं होता; जबकि ईश्वर-विश्वास हमें एक आंतरिक सुरक्षा प्रदान करता है। जिन्हें

भगवान पर विश्वास होता है, वे सदा परमात्मा का संरक्षण अनुभव करते हैं और उनका यह ईश्वर-विश्वास ही उन्हें एक प्रकार की मानसिक सुरक्षा प्रदान करता है।

ऐसे लोग इस विश्वास के साथ जीते हैं कि जीवन की हर परिस्थिति में भगवान उनके साथ हैं और उनकी कृपा से जो कुछ भी होगा, अच्छा ही होगा। यह विश्वास उन्हें मानसिक सुरक्षा व शक्ति प्रदान करता है, जिसके बल पर वे अपने जीवन की हर विषम परिस्थिति का सामना करने में सक्षम होते हैं, किंतु जो व्यक्ति ईश्वरीय चेतना पर अविश्वास करते हैं, उनका स्वयं पर विश्वास भी अहंकार से प्रेरित होता है। वे यह मान बैठते हैं कि वे सब कुछ कर सकते हैं और इस अभिमानवश वे किसी से सहायता भी नहीं लेते, जिसके कारण वे प्रायः अकेले रह जाते हैं। उनके जीवन का यह अकेलापन ही उनमें चिंता, भय, तनाव, अवसाद आदि अनेक तरह की मानसिक समस्याओं को जन्म देता है।

हम जीवन में बहुत कुछ पाना चाहते हैं और जो हमारे पास है उसे यथावत् बनाए रखना चाहते हैं, किंतु हम हमेशा यह भूल जाते हैं कि यह संसार नश्वर है। यहाँ की प्रत्येक वस्तु नश्वर है। जिसकी उत्पत्ति हुई है, उसका नाश भी होगा, किंतु हम अपने स्वार्थ और मोहवश इन सबसे चिपके रहते हैं और यह मोह ही हमारे भय का प्रमुख कारण है। जहाँ लोभ होगा, वहाँ भय भी होगा। हमारी संस्कृति हमें त्याग करना सिखाती है; क्योंकि जहाँ पर त्याग है, वहाँ लोभ नहीं और जहाँ लोभ नहीं, वहाँ भय नहीं।

सुख व शांतिपूर्वक जीवनयापन करने के लिए, जीवन में विकास करने के लिए हमें भयमुक्त होना ही होगा। हमारे अधिकतर भय काल्पनिक होते हैं, जो हमारी नकारात्मक सोच का परिणाम होते हैं। निरंतर नकारात्मक सोच व्यक्ति को भयभीत बना देती है। ऐसे व्यक्ति के मन में हमेशा एक अनजाना भय बना ही रहता है और वह व्यक्ति अकारण ही डरता रहता है। ऐसे व्यक्ति प्रायः परिस्थितियों से भागने लगते हैं, पलायन करने लगते हैं, किंतु ऐसा करके भी वे भयमुक्त नहीं हो पाते; क्योंकि उनका भय तो उनके मन में ही बसा है। हम परिस्थितियों से तो भाग सकते हैं, किंतु अपने मन से कहाँ तक भाग पाएँगे!

मृत्यु का भय सब प्रकार के भयों में सबसे अधिक सूक्ष्म होता है। उसकी जड़ें अचेतन तक में गहरी बैठी होती हैं और वहाँ से उन्हें हटा पाना आसान नहीं होता। मृत्यु जीवन का एक शाश्वत सत्य है और मृत्यु पर विजय पाना संभव नहीं है, पर इस सत्य के साथ यह भी सत्य है कि सही सोच व सकारात्मक दृष्टिकोण के साथ मृत्यु के प्रति अपने नजरिये में बदलाव ला पाना संभव है। स्वयं भय ही इस मार्ग में एक बड़ी बाधा है।

इस भय से छुटकारा पाने का एक उपाय तो यह है कि हम यह जान लें कि जीवन अविभाज्य और अमर है; बस, उसके रूप अनगिनत होते हैं और वे रूप ही क्षणिक तथा नाशवान होते हैं। इस तरह से जीवन का नाश तो नहीं होता, रूप अवश्य परिवर्तित हो जाता है और शारीरिक चेतना इसी परिवर्तन से भय खाती है। भगवान श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्गीता में अर्जुन को यही ज्ञान देते हुए कहते हैं—

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥

—श्रीमद्भगवद्गीता 2/13

अर्थात जैसे जीवात्मा की इस देह में बालकपन, जवानी और वृद्धावस्था होती है, वैसे ही अन्य शरीर की प्राप्ति होती है; उस विषय में धीर पुरुष मोहित नहीं होता अर्थात मृत्यु से भयभीत नहीं होता।

तर्कबुद्धि हमें यह सिखाती है कि जिस चीज से बचा नहीं जा सकता, उससे डरना मूर्खता है। उपाय यही है कि मृत्यु को सृष्टि का एक शाश्वत सत्य समझकर स्वीकार कर लिया जाए और दिन-प्रतिदिन, क्षण-प्रतिक्षण शुभ कर्म करने में निरत रहा जाए। जो अच्छे-से-अच्छा कर सकते हैं, हम वही करें और इसकी चिंता न करें कि आगे क्या होगा? जो भावनाशील हैं, उन्हें यह स्वाभाविक रूप से विश्वास होता है कि उनके जीवन की सभी घटनाएँ भगवद् इच्छा की अभिव्यक्ति हैं। इन घटनाओं को एक शांत समर्पित भाव से ही नहीं, बल्कि कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करना चाहिए और यह विश्वास रखना चाहिए कि जो कुछ भी उनके साथ घटता है, वह सदा ही उनके भले के लिए होता है। यह विश्वास ही उन्हें समस्त भयों से मुक्त कर देगा।

मनुष्य के जीवन की श्रेष्ठता इसी सत्य में है कि हम अपने जीवन की सभी शुभ संभावनाओं को साकार रूप देने में सक्षम हो पाएँ। भय चाहे बाह्य हो अथवा आंतरिक, वह हमें अपने जीवन की इस प्रगति से सदा वंचित रखता है। नकारात्मक सोच, अनावश्यक चिंताओं को जन्म देती है और यही चिंताएँ धीरे-धीरे भयावह भय का रूप धारण कर लेती हैं, जो हमारे व्यक्तित्व पर ग्रहण की तरह से छा जाता है।

भय से मुक्त जीवन जीने के लिए हमें सबसे पहले अपनी सोच को बदलना होगा। यदि महान व्यक्तित्व के जीवन को पढ़ा जाए तो यह देखने को मिलता है कि महामानवों ने अपने जीवन में सदा सही सोच, आत्मविश्वास और ईश्वर-विश्वास जैसे सद्गुणों को प्रश्रय दिया तथा उसी कारण वे अपने जीवन में उन ऊँचाइयों को प्राप्त कर पाने में सक्षम हो सके। सकारात्मक सोच, भगवद् आस्था, जागरूकता और सद्ज्ञान ऐसे साधन हैं, जिन्हें अपने जीवन में अपनाकर समस्त भयों से मुक्त हुआ जा सकता है। ❐

एक दिन, दो दिन और लगातार कई दिन तक भी रात-रात भर तारों की गिनती करते देखकर आखिर माँ ने अपने बच्चे से पूछ ही लिया—"बेटे! तुम रात भर आकाश की ओर मुँह किए क्या गिना करते हो?"

"आकाश के सितारे माँ! बहुत प्रयत्न करता हूँ। किंतु आकाश इतना विराट् और नक्षत्र इतने अधिक हैं कि वे गिनने में ही नहीं आते।"

माँ ने थपकी दी और बोली—"बेटा, देर हुई जा रही है। सो जा, यह सितारे गिनने के लिए नहीं हैं, वरन इसलिए बनाए गए हैं कि लोग उन्हें देखकर वैसा ही चमकीला और झिलमिलाता जीवन जीना सीखें।"

वयोवृद्ध माता-पिता की उपेक्षा न हो

घोर स्वार्थवादी दृष्टिकोण क्रमशः अधिकाधिक बढ़ता जा रहा है। विलास और वैभव हर किसी को चाहिए। इस संदर्भ में जो कर्त्तव्यपालन आड़े आते हैं, अब उनकी बुरी तरह उपेक्षा करने का प्रचलन बन गया है। सोचने के तरीके में प्रमुखता इसी बात की होती जा रही है कि जिससे जब तक, जितना लाभ उठाया जा सके, उतना उठा लेने के उपरांत जो अनुपयुक्त बचा है, उससे पीछा छुड़ा लिया जाए। कचरे को कूड़ेदान में फेंका जाना तो अनिवार्य है, पर जिन पशुओं से जीवनभर कमाई कराई है, दूध लिया है, बच्चे पाए हैं, उन्हें बूढ़ा होने पर कुछ समय पेंशन के रूप में अपनी मौत मरने तक की व्यवस्था बना दी जाए; इसे आम प्रचलन में स्वीकार नहीं किया जाता है। कसाईखानों में ही वृद्ध पशुओं को शरण मिलती है। तर्क दिया जाता है कि जो छूँछ हो गए, उनकी निरुपयोगिता का भार क्यों ढोया जाए? इसमें स्थान घिरने से लेकर, निर्वाह-खरच वहन करने में घाटा-ही-घाटा है।

कचरे की तरह पशुओं को भी अनुपयोगी होने पर मरने से पहले ही उन्हें कसाईघर भेजकर हुंडी भुना ली जाती है और कृतज्ञता व्यक्त करने का, कर्त्तव्यपालन करने का बोझ एक ही झटके में उतार फेंका जाता है। यह प्रथा कुछ अपवादों को छोड़कर सर्वमान्य जैसी बन गई है।

एक प्रश्न, एक कदम और बढ़ने का आ उपस्थित हुआ है। वृद्धजन जितना काम कर पाते हैं, उसकी तुलना में उनके लिए निवास का, निर्वाह का, चिकित्सा का, सेवा-सहायता का भार कहीं अधिक बोझिल हो जाता है। उसकी उपस्थिति उन्हें भारतुल्य प्रतीत होती है, जो उनके वंशज या उत्तराधिकारी कहलाते हैं। मन पीछा छुड़ाने का होता है, पर लोक-लाज की विवशता उन्हें ऐसा कुछ करने नहीं देती कि वृद्धजनों की अवमानना का कलंक चर्चा का विषय बने और उन्हें बदनाम होना पड़े।

अपने देश में यह असमंजस अपने स्थान पर बना हुआ है और वृद्धजनों को भी वृद्ध पशुओं की तरह उपकार रूप में स्थान मिल रहा है, पर हवा का रुख देखते हुए प्रतीत होता है कि यथास्थिति बहुत दिन बनी न रहेगी। स्वार्थ की सघनता बढ़ती जाती है और परमार्थ क्रमशः पलायन करता जाता है। सुविधा-साधन की तुलना में कर्त्तव्यपालन की अवहेलना का सिलिसिला चल पड़ा है और वह क्रमशः अधिक उग्र ही होता जा रहा है। इसे वृद्धजनों के लिए खतरे की घंटी ही कहना चाहिए।

पाश्चात्य देशों में इस संदर्भ में जो प्रचलन व्यवहार में तेजी से आने लगा है, उसे गंभीरतापूर्वक समझा जाना चाहिए, क्योंकि उसका अनुकरण अपने देश में भी दिखाई दे रहा है। उन देशों में लड़के कमाऊ, विवाहयोग्य

होने पर अभिभावकों से अलग हो जाते हैं। घर के लोग उनकी अपनी कमाई में हिस्सेदारी माँगने वाले और स्वच्छंदता में बाधा डालने वाले प्रतीत होते हैं। इसलिए सुविधा इसी में समझी जाती है कि परिवार से पीछा छुड़ाकर अपने ढंग का, अपनी मरजी का निरंकुश जीवन जिया जाए। अपनी कमाई में पत्नी के अलावा और किसी को हिस्सेदार न बनने दिया जाए। यह आम प्रचलन अब अधिकांश लोगों द्वारा अपना लिया गया है। कम ही लोग ऐसे पाए जाते हैं, जो वृद्ध होने पर भी सम्मान सहित अपने स्वजन परिजनों के साथ निर्वाह कर लेते हैं। कारण कि वृद्धावस्था में वे उतना नहीं कमा पाते हैं, जिससे अपनी आवश्यकताएँ स्वावलंबनपूर्वक पूरी कर सकें। इसलिए वे उन्हें भारी लगते हैं, जिन्हें उनकी सेवा में धन या समय लगाना पड़ता है। वृद्धों के रहते, जगह घिरती है और इससे उन तरुणों की स्वच्छंदता में कमी पड़ती है, जो किसी का विशेषतया बड़ों का अंकुश स्वीकार करने के लिए सहमत नहीं होते हैं।

इस आंतरिक संघर्ष में दोनों पक्ष दुःखी रहते हैं। वृद्धों को अपने लिए कोई आश्रय नहीं सूझता, लड़के भी धक्के मारकर बाहर निकालने की हिम्मत नहीं कर पाते; ऐसी स्थिति में दोनों ही तनावग्रस्त रहते हैं। परिस्थितियों का भार वहन करते हैं और विवशता के कारण खीझते रहते हैं। यह खीझ भीतर-ही-भीतर घुटन बनकर नहीं रह जाती है और वह चर्चा का विषय बनती है। जो साहसपूर्वक अलग हो जाते या कर दिए जाते हैं, उनके लिए यह कठिन पड़ता है कि अनभ्यस्त, एकाकी तथा अनेक असुविधाओं से भरा जीवन कैसे जिएँ? जो निकाल देते हैं, उन्हें भी खटका तो बना ही रहता है। उन्हें भी कभी-न-कभी वृद्ध होना पड़ेगा, तब वे भी इसी परंपरा का शिकार बनने से बच न सकेंगे।

ये विषम परिस्थितियाँ अभी विदेशों में बहुलता में हैं। समझा जाना चाहिए कि उधर से आने वाली हवा इधर भी अपना प्रभाव छोड़ रही है। हमारे कपड़े अँगरेजी तर्ज के होते हैं, बाल भी उसी ढंग के होते हैं। रहन-सहन में, खान-पान में बहुत कुछ पाश्चात्य संस्कृति का समावेश हो गया है। तब समर्थ होते ही अलग परिवार बसाने की प्रथा अपने देश में न आए यह हो ही नहीं सकता। वनवासी जातियों में से तो कइयों में यह प्रथा पहले से ही है कि वे विवाह होते ही अपनी अलग झोंपड़ी बना लेते हैं। निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि अभिभावकों के वृद्ध हो जाने पर उनकी सेवा वैसी नहीं की जाएगी, जैसी कि श्रवणकुमार ने की थी।

किसी को सौभाग्य-सुयोग्य मिले, वह अच्छी बात है। आदर्शों के निर्वाह की आशा करनी चाहिए और चेष्टा यह होनी चाहिए कि कर्त्तव्यपालन का माहौल बना रहे। इतने पर भी परिस्थितियों के प्रवाह को देखते हुए हर किसी को चौकन्ना तो हो ही जाना चाहिए, ताकि बुरा समय आने पर इसलिए पछताना न पड़े कि ऐसा घटित होने का उन्होंने पूर्व अनुमान न लगाया था। अनौचित्य को अपनाया न जाए, उसका समर्थन भी न किया जाए, फिर भी चौकन्ना रहना तो दूरदर्शितापूर्ण ही कहा जाएगा, ताकि समय रहते कुछ उपाय बन पड़े।

होना यह चाहिए कि किसी को भी अब यह नहीं मानना चाहिए कि लड़कों से वंश चलेगा, घर का दीपक जलता रहेगा, परलोक में पिंडदान का लाभ पहुँचता रहेगा। ये भ्रांतियाँ अब निरस्त ही होनी चाहिए और समय की माँग के अनुरूप यही सोचा जाना चाहिए कि लड़की और लड़के एक समान हैं। दोनों के प्रति समान रूप से कर्त्तव्यपालन करना चाहिए, किंतु किसी से भी बदले की ऐसी आशा न करनी चाहिए जो स्वप्नमात्र ही बनी रहे।

वृद्धावस्था आने से पूर्व आज के हर समझदार को यह मान्यता बना लेनी चाहिए। कि उसे एकाकी और स्वावलंबी जीवन जीने के लिए विवश होना पड़ सकता है। उसके लिए मानसिक तैयारी तो समय रहते जुटा ही लेनी चाहिए, साथ ही अर्थव्यवस्था भी ऐसी रखनी चाहिए कि किसी के आगे तब हाथ न पसारना पड़े, जब उपार्जन क्षमता न रहे।

शरीरचर्या से संबंधित सभी कार्यों में आत्मनिर्भर होने का अभ्यास डाले रहना चाहिए। अक्सर लोग अपने निजी कामकाज के लिए दूसरों पर निर्भर रहने लगते हैं। बाद में इस आदत को छोड़ना कठिन पड़ता है। इसलिए उचित यही है कि सर्वथा अशक्त या अपंग हो जाने तक अपने निजी कामकाजों में दूसरों की सहायता कम-से-कम लेनी पड़े। यदि लेनी पड़े तो बदले में और के कामकाज में सहायता करने में भी अभ्यस्त होने जैसी प्रसन्नता अनुभव करनी चाहिए।

बुढ़ापे में स्वभाव कई बार चिड़चिड़ा हो जाता है। निराशा भी छाई रहने लगती है। पिछले अच्छे दिनों की स्मृति में आज का समय भारी लगने लगता है। अच्छा यही है कि मात्र आज की परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढाल लेने का प्रयत्न किया जाए, न ही भूतकाल की सुख-सुविधाओं का स्मरण करे और न अशक्त, रुग्णता या मरणोपरांत की स्थिति के बारे में कुकल्पनाएँ करके अपने को दुःखी बनाए। अपने वयोवृद्ध माता-पिता की आंतरिक भावनाएँ आहत न हों, उन्हें परिवार में उपेक्षित होने का दुःख न हो, इसके लिए हम सभी को उनके प्रति सेवा-सम्मान का भाव अक्षुण्ण बनाए रखना जरूरी है। ❐

विलंब सूचना

विगत काफी समय से डाक- व्यवस्था चरमरा रही है। पाठकों तक समय से युग निर्माण योजना नहीं पहुँच रही है। 31 जुलाई 2025 से डाकघर का नया सॉफ्टवेयर प्रारंभ होने पर लंबे समय तक बुकिंग नहीं हुई। अभी भी डाकघर में युग निर्माण योजना पड़ी है। अगस्त, सितंबर, अक्टूबर की प्रतियाँ भी अति विलंब से गई हैं।

डाक विभाग के अधिकारियों से निरंतर संपर्क किया जा रहा है- आश्वासन मिल रहे हैं। अभी भी कार्य की गति धीमी है। कब तक समाधान हो सकेगा, कुछ पता नहीं।

पाठकों को हुई असुविधा के लिए हमें खेद है। आशा है, जल्दी ही स्थिति सामान्य होगी। पाठकों को उनकी प्रिय युग निर्माण योजना समय से मिल सकेगी।

गायत्री तपोभूमि के बैंक खातों का विवरण

1. धर्मार्थ दान गायत्री मंदिर :
   - दैनिक व्यवस्था, संस्कार
   - अखण्ड दीप, पर्व-त्योहार
   - अनुष्ठान, विभिन्न प्रकार के शिविर
   - अन्नक्षेत्र (भोजन-व्यवस्था)
   - गायत्री मंदिर जीर्णोद्धार एवं पुनर्निर्माण

PAN-AAATG0704D
Bank A/C-Gayatri Mandir Trust,
★**IOB Branch :** Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura
IFSCODE-IOBA-0001441,
A/C No.-144102000000003,
★**PNB Branch :** Jawahar Inter College,
Govind Nagar, Mathura, **IFSCODE** - PUNB0497600
A/C No. - 4976005700000080
★**SBI Branch :** Vrindavan Gate, Mandi Ram Das,
Mathura, **IFSCODE** - SBIN0002503
A/C No. - 42593590624
★**YES Bank Branch :** Dampier Nagar, Mathura
IFSCODE - YESB0000072
A/C No. - 007288700000890

---

3. ० गोशाला दान
   ० प्राकृतिक चिकित्सा

PAN-AAATY2059 F
Bank A/C-Yug Nirman Yojana Vistar Trust,
★**IOB Branch :** Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura
IFSCODE-IOBA-0001441,
A/C No.-144102000002051,
Bank A/C-Yug Nirman Yojana Vistar Trust (02)
★**PNB Branch :** Jawahar Inter College, Govind
Nagar, Mathura, **IFSCODE**-PUNB0497600
A/C No. - 4976005700000062

2. पुण्यार्थ दान :
   ० युग निर्माण विद्यालय, सप्त क्रांति आंदोलन
   ० पं० श्रीराम शर्मा आचार्य पारमार्थिक चिकित्सालय में नि:शुल्क चिकित्सा शिविर, अन्नक्षेत्र (भोजन-व्यवस्था)
   ० आपदा निवारण, चिकित्सा सुविधा एवं अन्य पारमार्थिक प्रयोजनों के लिए (दान की राशि पर आयकर अधिनियम की धारा 80G के अंतर्गत छूट प्राप्त है।) परिजनों को PAN भेजना अनिवार्य है।

PAN-AAATY0086E
Bank A/C-Yug Nirman Yojana Trust,
★**IOB Branch :** Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura
IFSCODE-IOBA-0001441,
A/C No.-144102000000002
★**PNB Branch :** Jawahar Inter College, Govind
Nagar, Mathura, **IFSCODE**-PUNB0497600
A/C No.-4976005700000053,

---

4. ० युग निर्माण योजना (हिंदी) मासिक,
   ० युग शक्ति गायत्री (गुजराती) मासिक,
   ० साहित्य, हवन सामग्री, प्रचार सामग्री,
   ० पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

PAN-AAATY2059 F
Bank A/C-Yug Nirman Yojana Vistar Trust
(Prachar Khata)
★**IOB Branch :** Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura
IFSCODE-IOBA0001441,
A/C No.-144102000002021
Bank A/C-Yug Nirman Yojana Vistar Trust (01)
★**PNB Branch :** Jawahar Inter College, Govind
Nagar, Mathura, **IFSCODE**-PUNB0497600
A/C No.-4976005700000071
Bank A/C-Yug Nirman Yojana Vistar Trust
★**SBI Branch :** Vrindavan Gate, Mandi Ram Das,
Mathura, **IFSCODE** - SBIN0002503
A/C No. - 42597926175

E-Mail ID : yugnirman@yugnirmanyojna.org
Website : www.yugnirmanyojna.org

आत्मदीपक जल रहे हैं

आत्मदीपक यह प्रभो! तुमने जलाए-जल रहे हैं।
कर्म का जो पथ दिखाया, प्राण उस पर चल रहे हैं॥

पूज्यवर तुमने कहा था, अंश अपना दे रहा हूँ।
कष्ट में घबरा न जाना, नाव तो मैं खे रहा हूँ॥

साथ हो हरदम इसी विश्वास में हम पल रहे हैं।
कर्म का जो पथ दिखाया, प्राण उस पर चल रहे हैं॥

हम जहाँ जाते वहीं संदेश देते सुदृढ़ मन से।
त्याग दो दुष्वृत्तियाँ साथी! रहो सुख से-अमन से॥

रहो बचकर विविध आकर्षण सभी को छल रहे हैं।
कर्म का जो पथ दिखाया, प्राण उस पर चल रहे हैं॥

है जहाँ फैला अँधेरा ज्योति लेकर चल रहे हैं।
ज्योति को रखने अखंडित स्नेह से हम जल रहे हैं॥

मेंट देंगे कलुष वह विषवृक्ष बन जो फल रहे हैं।
कर्म का जो पथ दिखाया, प्राण उस पर चल रहे हैं॥

है सक्रिय संजीवनी जो हमें दीक्षा में पिलाई।
जल रही है ज्योति जो मन-प्राण में तुमने जगाई॥

लालिमा दिखने लगी है, तिमिर के कण गल रहे हैं।
कर्म का जो पथ दिखाया, प्राण उस पर चल रहे हैं॥

मार्ग जो तुमने बताया उसी पर चलते रहेंगे।
स्नेह से जलते रहेंगे, बीज से गलते रहेंगे॥

सृजनहित बलिदान होने, हृदय नित्य मचल रहे हैं।
कर्म का जो पथ दिखाया, प्राण उस पर चल रहे हैं॥

—माया वर्मा

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी पर्व

पत्रिका प्रचारक सम्मेलन छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश

युग निर्माण योजना

(मासिक) R.N.I No. 13636/64

प्र.ति. 17.09.2025
Regd No. Mathura-024/2024-2026
Licensed to Post Without Prepayment
No. Agra/WPP-10/2024-2026

15 अगस्त स्वतंत्रता दिवस कार्यक्रम

स्कैन करें

(वेबसाइट) (यूट्यूब) (फेसबुक) (इंस्टाग्राम) (व्हाट्सऐप) (एक्स)

स्वामी युग निर्माण योजना ट्रस्ट, मथुरा के लिए मृत्युंजय शर्मा द्वारा युग निर्माण योजना ट्रस्ट, मथुरा से प्रकाशित तथा युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा से मुद्रित। संपादक– ईश्वर शरण पाण्डेय, सह संपादक–सूर्यमणि तिवारी, दीनदयाल अमृते

दूरभाष नंबर–(0565) 2530115, 2530399, 2530128. मो.– 09927086289, 09927086287
E-Mail: yugnirman@yugnirmanyojna.org Website: www.yugnirmanyojna.org